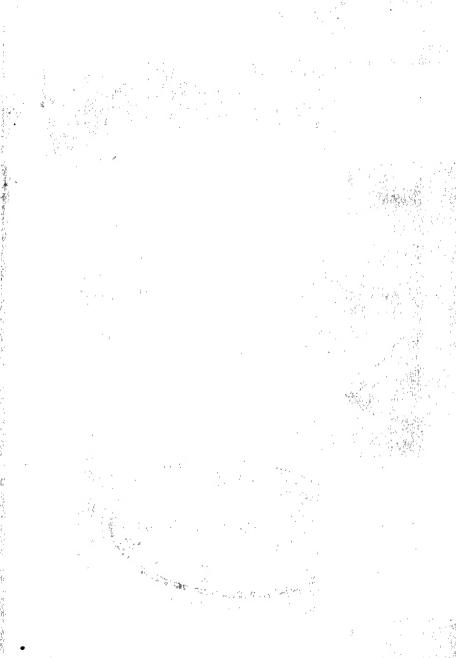
#### GOVERNMENT OF INDIA

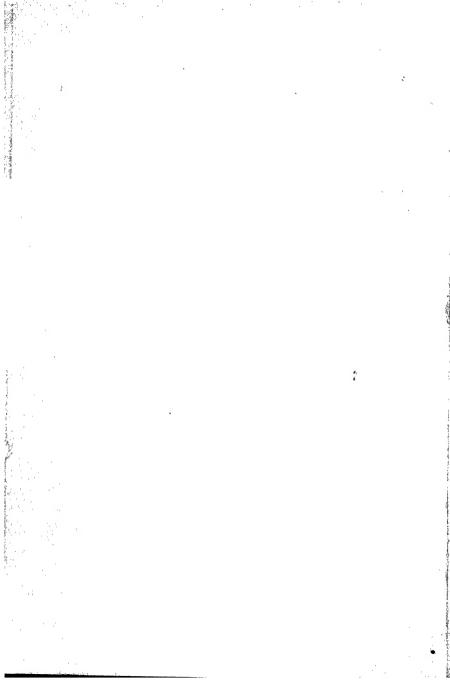
# ARCHÆOLOGICAL SURVEY OF INDIA

### CENTRAL ARCHÆOLOGICAL LIBRARY

ACCESSION NO. 19607	
CALL No. 294.1/ Vis	

D.G.A. 79





Bir i delle i	
	ä
	Ŷ,
* 30 ×	Į,
	F
विदिकाश्रम-प्रनथ-माला संख्या ३ 🔭 🦷	t
	É
बिं वद-र न्दश	ı
	ľ
	É
	100
	T
द्वितीय भाग	, Car
	Ě
🖫 🖁 🧗 (मानस-सन्देश) 🖁	
🖫 🛚 अर्थात् 🗓	E
्रा चि श्रन्तःकरण के स्वरूप, बल तथा सदुपयोग का वि कथाके रूपमें पूर्ण वर्णन।	
	ı
क्शांक रूपम पूर्ण वर्गन।	
	1
र्भ र व्यक	l
<b>1 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3</b>	١
🎇 🗓 श्री विश्ववन्धुशास्त्री, 🛭 म.ए.एम.ओ.एल. 🗓	
श्री प्राचिक्षि <sup>32</sup>	
श्रीचाञ्च	
🚝 🖔 💯 दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय, लाहौर । 🔠	
पुत्रागापुत्राखगलाग्यारमः राखारा	
6.00	
🔚 🖔 पं० देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर ने 🧏	
🎾 🎚 श्रीमती प्रबन्धकर्त्री-सभा, डी.ए.वी. कालेज लाहौर 🞚	
Dest III	
के लिये प्रकाशित किया।	
	1
प्रथमवार ) द्यानन्दाब्द (मूल्य १) सादा २००० ) १०३ (,, १।) सुनहरी जिल्दु	
🔚 📗 २००० ) १०३ ( 🗒 १।) सुनहरी जिल्द् 🛚	
N N	I
	1
The Market Market Control Heavy Harden'S Lievel Lave Lave Hardet	Ť
SC STOCK SHEEK	У



Ate. No 196.07..... Date 23.3.63



सत्यप्रियो यतिवरो विमलस्तपस्वी,
कुम्भे पयोधिनयनग्रहचन्द्रवर्षे ।
मन्दािकनीतटभ्रवि प्रणिखातवान् यः,
पाखण्डखण्डनिवधात्रभयं पताकाम् ॥ १ ॥
श्रौतैकमाननिपुणैरुपपत्तितित्रैराभासयन् निगमनैर्विविधप्रमाणैः ।
मिथ्यािवचारजिटलान् बहुवादिवादान्,
वेदाख्यलोकजननीमुदद्धिरच्च ॥ २ ॥
श्रुतिप्रणीत्या सुवितानकीर्चेरानोपकृत्या प्रगतिं गतस्य ।
गुरोर्द्यानन्दमुनेः प्रियः स्याह्यपुष्टारः शिश्चना कृतोऽयम् ॥ ३ ॥



### समर्पग

\* Significant specifical content of the specific of the spe

कहां वेदका अतिगहन, गंभीर, अथाह सागर और कहां मुझ सरीखा,निःसाधन, निर्वेल नाविक! अपनी अशक्तिका विचार करता हुआ आश्वर्य करता हूं कि मेरी यह कठिन यात्रा क्योंकर पूरी होगी ! हां, निराशा-घनाच्छादित, मेरे मानसिक नभोमण्डलमें भगवान् दयानन्दद्वारा प्रदर्शित प्रकाशकी झलक है। यही मेरा बल है और यही मेरा सहारा है। उसी अखण्ड ब्रह्मचारी, कठिनव्रतधारी, जनोपकारी, वैदिकधर्मधुरंधर, विद्वनमण्डलमण्डन, महाम्रानिके उत्साहसे उत्साहित होकर, मैं इस दुर्गम, दुस्तर यात्रापर निकल पड़ा हूं। उस सचे गुरुने सँ० १९२४ के हरद्वार-कुंभके पर्वेपर पाखण्डखण्डनीपताका गाड़कर, वैदिकधर्म-पुनरुद्धारके पवित्र संकल्पको किया था। उस महत्त्वपूर्ण घटनाके उपलक्ष्यमें यह लघु उपहार ऋषि-चरणोंमें सादर समर्पित है। विश्वबन्धुः

<del>ૠૹૹૹૹૹૹૹૹૹૹૹૹૹૹૹૹૹૹૹ</del>ૹ

#### प्रस्तावना

१. वेदसन्देशके प्रथम भागके अन्तमें यह लिखा गया था कि अन्तःकरणकी शुद्धि आदि विषयोंपर आगे लिखा जावेगा। परन्तु इस अन्तरमें कई प्रकारके कार्योंमें लगे रहनेके कारण, इससे पूर्व इस मानसिक भावनाको कार्यक्रपमें लाना संभव नहीं होसका। अब भी जिस अवस्थामें यह भाग जनताके सामने उपस्थित है, यह अनेक बातोंमें संशोधनकी अपेत्ता करता है। शारीरिक अस्वास्थ्यमें इसका आरंभ किया गया और उसी दशामें इसे समाप्त करना पड़ा है। हरद्वार-कुम्भके उपलच्यमें यह लिखा गया है और उस पर्वका समीप होना ही इस शीव्रताका मुख्य कारण है।

२. रचना-क्रमके अनुसार इस भागमें दो अध्याय रखनेका विचार था। परन्तु मानसाध्यायका अधिक विस्तार होजानेके कारण, इसे ही यहां पूर्णरूपसे देना उचित समका गया है। विषयको सुगम करनेकेलिये उञ्चासोंके अन्दर खग्रडोंकी कल्पना और बढ़ा दी गयी है। स्वाध्यायशील सज्जनोंको इससे अधिक लाभ होगा। विषयों तथा प्रमाणोंकी स्वचियां मालाके अन्य प्रन्थोंकी तरह, यहां भी लगा दीगयी हैं। आशा है, आर्यपाठक-वर्ग वेदसन्देशके इस भागको भी पूर्ववत अपनाकर, तीसरा भाग जिखनेकेलिये उत्साहित करेंगे। उसमें वैदिक ईश्वर-भक्तिका वर्णन होगा। अनुभवी विद्वानोंसे प्रार्थना है कि जो श्रुटियां रह गयी हों, उनकी और मेरा ध्यान आकर्षित करके, मुक्ते अपना आभारी बनावें। पं० भीमदेवजी शास्त्री एम. ए. एम. ओ. एल ने सचियां तय्यार की हैं, और शुद्ध प्रकाशनका श्रेय पं० देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्करको है।

वैदिकाश्रम, लाहौर महाशिवरात्रि, १९५३

विश्वबन्धुः

## विषयानुऋमगिका

	पृष्ठ
(क) प्रथमोछ्वास—अन्तःकरणनिरूपण,	१–३३
१म खराड-ग्रन्थारम्भ निर्देश, मानसी प्रार्थना,	३-४
श्य खगड—मथुरा-शताब्दीका नायक, शताब्दीका	
सन्देश,	8–१०
३य खगड—अन्तः करणका स्वरूप, श्रात्माकी	
शक्ति, मनकी गति,	१०–१६
<b>४र्थ ख</b> गड—मानसिक जगत्, संशय, निश्चय,	
स्मृति श्रादिका ज्ञान,	१६-२१
kम खगड—मानस्-सरोवर, सरस्वतीकी महिमा,	
मानसिक बल,	२२–३३
साधककी ग्रात्म-चेतावनी	३४
(ख) द्वितीयोद्ध्वाससरस्वती-जागरण,	14-66
१म खगड—बुद्धिकी प्रेरणा, बुद्धिका श्रादर्श तथा प्राप्ति	, ३७–४८
२य खगड—ज्ञानकी महिमा, वार्गीका उपयोग,	
सार्वभौम वेद,	४५-६१
३य खगड- वाग्देवीका आत्म-दर्शन, सबकी थ्रा-	
धारमृत सरस्वती, प्राचीन समयकी	
भाजक,	ई१-७४
र्थ्य खरड-शरणागतकी टेर, तीन और सातका	
रहस्य, ज्ञानसे मित्रता, तपका महत्त्व,	<b>৬</b> ৪–১১

	us
(ग) तृतीयोछ्वासमार्ग-प्रदर्शन,	८९-१३८
१म खगड—धारणाकी दृढता, साधकोंका संकल्प	Γ,
स्वप्नका रहस्य,विचार-शक्तिकी महत्ता	
रय खगड—पापसे घृणा, धर्ममें प्रवृत्ति, शारीरिक	ត
तथा मानसिक शुद्धि,	१०२-११२
<b>२य खगड—पश्चात्ताप और पुनरुद्धार, प</b> रमात्मा	का
व्रत, पापके भेद्, जीवनका चिह्न,	
पापसे क्वटकारा,	११३–१२४
४र्थ खगड—जीवनका आदर्श, ऋतकी व्याख्या	
तीन प्रकारकी पवित्रताएं	१२४−१३≍
(घ) तुरीयोछ्वास—साधन-संविधान, १	
१म खगड—सत्संग और सज्जनता, श्रेष्ठ मनुष्य	,
मित्रताका भाव, उन्नत श्राद्शे,	
रय खगड─आचार-प्रतिष्ठा, सत्यको महिमा, श्र-	
स्तेयका भाव, सात मर्यादाएं,	१५१–१६०
<sup>३</sup> य खण्ड─यात्राका आरम्भ, साधकका जीवन,	
जीवनकी कठिनाई, कर्मका महत्त्व, तप,	
दीज्ञा, दिज्ञिणा ध्रौर श्रद्धारूपी चार पड़ाव, परम व्रत, ,	१ <b>६०–१७</b> ०
भ्यं खगड—ज्ञान्तिका सन्देश, श्रन्तिम लच्च,	
विश्व-प्रेमकी श्राह्मा, उपसंहार,	
रमन्म नगमा आसा, ७५एहिर,	100-106

### मंत्रोंकी अकारादि क्रमसे सूची ।

	पृष्ठ		<b>দূ</b> ছ
भ्र		आ देवानामपि पन्थां	१४९
अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः	પ્રહ	आयुर्यज्ञेन कल्पतां	१२८
अझे त्वं सुजागृहि	१६१	म्	
अझे तपस्तप्यामहे	ृ८३	इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं	984
अग्ने व्रतपते व्रतञ्चरिष्यान		इदमिन्द्र ऋगुहि	९४
अप्ने व्रतपते व्रतम्	900	इदमुच्छ्रेयो	999
अनमित्रं नोअधरात्	380	इध्मेनाम्न इच्छमानो	४६
अपकामन् पौरुषेयाद्	९८	इहेवाभि वितन्०	७७
अमाकृत्वा पाप्मानं	30%	उ	
अव ज्यामिव घन्वनो	१६२	उत त्वः पञ्यन्नदुद्शी	1013
अइमन्वती रीयते	१६३	,	48
असद् भूम्याः	૧૫૫	उत वं सक्ये स्थिरपीतं	છેલ
अहं राष्ट्री संगमनी	६४	उपहूतो वाचस्पति	७७
अहं रुद्रायधनु०	६९	उपह्नरे गिरीणाम्	२३
अहं रुद्रेभिर्वसुभिः	६२	उभाभ्यां देव सवितः	906
अहं सुवे पितरं	७०	ऋ	
अहं सोममाहनसं	६३	ऋचं साम यजामहे	60
अहमेव वात इव	७१	ऋचं साम यदप्राक्षं	69
अहमेव स्वयमिदं	६८	ऋतस्य गोपा	१३५
थ्रा		ऋतस्य तन्तुर्विततः	१३६
आकृतिं देवीं सुभगां	, 900	ऋतस्यर्तेनादित्या	१२२
आकृज्यानो बृहस्पत	303	क	
आ त एतु मनः	२५	कासेन मा कास	૧૪૬

	aa a		पृष्ठ
च		परः सो अस्तु	940
चोदयित्री सूनृतानां	40	परि माग्ने दुश्चरितात्	949
त		पर्यावर्ते दुष्वप्न्यात्	९७
तत्सवितुर्वरेण्यं	३९	पवमानः पुनातु मा	906
तपश्चा स्तां	१६५	पवित्रवन्तः परिवाचम्	१३३
तां सविता सवां	१७३	पावका नः सरस्वती	ধৎ
ते न आस्नोवृकाणां	385	पुनन्तु मा देवजनाः	900
त्वं हि नस्तन्वः	998	पुनरेहि वाचस्पते	७६
त्वं नो मेधे	80	पुनर्न पितरो	२६
त्वमग्ने प्रथमो	१७४	प्रति पन्थामपद्महि	٠ ٩٧٠
द्		प्रतान् मानाद्ध्या	१३१
दते दृष्ह	૧૭૪	प्र स मित्र	99
<b>हते ह</b> ५ <b>ह मा</b>	૧૭૫	व	
दृष्ट्वा रूपे न्याकरोत्	૧૫૫	बृहस्पतिर्नः	99
देवा यज्ञमतन्वत	946	<b>भ</b>	
दौष्वप्न्यं दौजीवत्वं	308	भद्रमिच्छन्त ऋषयः	98
द्यावा पृथिवी अनु मा	९५	H	
द्यौश्च म इदं	४५	मधुमन्से निक्रमणं	9६
द्रपदादिव मुमुचानः	992	मधुवाता ऋतायते	92
हे सृती अ <b>श्ट</b> णवं	१२६	मनसः काममाकृति	97
न		मनो न्वा हुवामहे	₹
न बहवः सम शकन्	908	मया सो अन्नमत्ति	8
न मा तमन्न	184	मयि त्यदिन्द्रियं	913
ч		महश्चिदग्न एनसो	99
पञ्चनद्यः सरस्वतीम्	२४	महो अर्णः सरस्वती	u

	पृष्ठ		<u> বৃদ্</u> ধ
मह्यं यजन्तु मम	९५	यास्ते शिवास्तन्वः	ટ ૧૬૪
मा नः समस्य दृढ्यः	१४३	ये त्रिषप्ताः परि यन्ति	७५
मा नो वधाय हत्नवे	994	1 -	१४२
मा नो हासिषुर्ऋषयो	\$20	ये वृक्णासो अधि	188
मा भे मी संविक्था	१३०	यो नः पाप्मन्	990
माहिभूमां पृदाकुः	947	यो नो रसं दिप्सति	૧૫૭
मेघां सायं मेघां			
मेधामहं प्रथमां	83	व	
		वयं सोम वर्त	?&
य		वाचस्पतिं विश्वकर्माणम्	८६
यिबद्धि ते विशो	994	विश्वा उत त्वया	999
यचिद्धि पुरुषत्रा	११६	वैश्वदेवीं वर्चस	365
यज्ञेन वाचः	५२	वतेन दीक्षामामोति	१६७
यत्किञ्चेदं वरुण	999	-ાતા કુલામાનાત	140
यथा भूमिमृतमना	१५६	হা	
यद्भे तपसा तप	८३	शतधारमुत्सं	८७
यदस्मृति चकृम	९९	शिवा नः शंतमा	८४
यदाशसा वदतो	३१	श्रुकोसि भाजोसि	03
यदि जाग्रद् यदि	१२३	गुकास श्राजास	९३
य६ेवा देवहेडनं	१२१	स	
यद्विद्वांसी	१२२	संजानामहै मनसा	৩९
यन्मे छिद्रं चक्षुषोः	२९	संज्ञानं नः स्वेभिः	७८
यस्तित्याज सचिविदं	५६		***
यस्ते स्तनः शशयो	३०	सक्तुमिव तितउना	43
यां मेधां ऋभवो	83	स तजीयसा मनसा	२८
यामृषयो भूतकृतो	83	सप्त मर्यादा	१५९

#### ( च )

	28		पृष्ठ
सम्यक् सम्यञ्चो		सूरिरसि वर्चोधा	93
सरस्वर्ती देवयन्तो	64	सूर्यों में चक्षुर्वातः	१०६
सर्वे नन्दन्ति	46	ह	
सुविज्ञानं चिकितुषे	গণই	हंसा इव श्रेणिशो	988



## अकारादिकमसे विषयसूची।

विषय	पृष्ठ	विषय	प्रष्ठ
भ्र		. ू उ	
अज्ञान-मद्का नाश	७३	उच्चतम आदर्शकी नींव आर विश्वास	FF- ७८
अन्तःकरण एक विस्तृत न	दिकि	उपसंहार	9७९
समान है	२४	ऊंचा आदशी	८१
अन्तःकरणका स्वरूप अन्तःकरणकी बृत्तियां	२१	ऋ	
अविद्वान् होना पाप है	६६	'ऋक्', 'साम'का तात्पर्य	co
अविद्या ही पापका मूल है		क	
अञ्जुद्धिका मूलोच्छेदन	909		१३७
श्रा		कल्याणका मूलमन्त्र	হ্ড
आचार-प्रतिष्ठा	१५१	ग गुरुमन्त्रकी महिमा	ફેલ્
आत्म-रक्षा आत्मविश्वास और विवेक	904	ग्रन्थारम्भ-निर्देश	3
आत्मावश्वास आर विवक आत्मा और मनका सम्बन्ध		ঘ	`
आत्माका धर्म-ज्ञान	92	घृणाका विषय	१०३
आदर्श गुरु	८७	च	•
आर्य पण्डित और शास्त्र	१३	चोरीकी निन्दा	१५७
इ		て	_
इन्द्र जीवात्माका नाम है	946	छिद्रपूर्तिकी भावना	२९
इन्द्रियोंद्वारा जगत्का अनुस		ज	
		जल शान्तिका चिह्न	११२
ईश्वरीय वाणीका विस्तार	ধই	जागृतिकी महिमा	183

विषय		पृष्ठ	विपय	<u> দূষ</u>
जातीय नेताका स्वरूप	···	185	दोनों आंखें खोलो	३३
जीवनका आदर्श	***	१२४	ध	44
जीवनका मुख्य चिह्न	***	२६		
जीवनका लक्षण	***	१२१	धारणाकी दृढ्ता तथा स्थिरता	
जीवनकी पराकाष्ट।	१७६-	-૧૭૭		63-303
जीवनके दो भाग	•••	350	धार्मिक अरुचि	१२९
जीवनके पूर्णता-भेद	•••	939	धैर्यको महिमा	१३५
जीवन-यज्ञ	•••	<b>3</b>	ध्यानमें प्राकृतिक योग	२३
जीवात्माका स्वरूप	***	२०	न	
ज्ञानका लक्ष्य	***	33	नवयुवकका आगमन	•••
ज्ञानकी महिमा	•••	88	नेकीका आधार परमात्मा	१३६
ज्ञानीकी परीक्षा	***	७९	प	
ठ			पथरीली नदी	३६३
ठीक साधन सम्पत्तिक	र जनगरक	66	पवित्रता शारीरिक तथा	
त	। उत्पाद्य	33	सिक स्वास्थ्य-वर्धक	
_			पश्चात्ताप और पुनरुद्धार	
तप और दीक्षा		980	पापका अन्त बुर। है	908
नपकी महिमा		१६५	पापके दो भेद	996
तीन और सातकी व्य		છપ્યુ	पाप प्रवृत्तिका कारण	999
तोते रटना आस्मिकश	-		पापसे घृणा	904
नहीं है	•••	१६८	पापसे मुक्ति	१२३
द्			पापीका जीवन सूखे व	शंसके
दीनताका जीवन मह	ापाप है	३२	समान	908
दुःस्वमका प्रतीकार	***		पुरुषका लक्ष्य	પ્ર
देह परमात्माकी अद्	पुत रचना	हा	प्रतिदिनकी धारणा	د
परिचायक	•			ति है १६६
				_

			विषय		पृष्ठ
विषय		न्रष्ठ		• • • •	-
प्रबोधकी इच्छा		१६१	महापुरुषोंका लक्षण	४२३-	१३४
प्रभुका सहारा	***	994	मानस सरोवर	•••	२२
प्रभुकी प्रार्थना	•••	પ્યુ	मानसिक जगत्	•••	98
प्रभुको प्रसन्न करनेका मार्	ì	६८	मानसिक तालाब	•••	१५२
प्रभु-प्रसाद पानेका मार्ग	•••	926	मानसिक माध्यम	•••	3,2
प्राप्त और अप्राप्तका भेद	***	२७	मानसिक विस्तार	•••	99
ब			मासिक सागरकी तरंगें	•••	१६४
बुद्धि और ऐश्वर्य	•••	४५	मानसिक स्वास्थ्य	•••	300
बुद्धि और महत्व	•••	છછ	मानसी प्रार्थना	***	8
बुद्धिका आदर्श		४३	माग बदलनेमें शान्ति	•••	330
बुद्धिकी प्रेरणा	•	ર્૭	मित्रताका पका आधार	•••	بوبع
बुद्धिकी विशालता		40	मेघाकी अराधना	***	83
ब्राह्मणका धन तपस्या	•••	६०	मोह और भ्रमही सन्ता	का	
भ			मूल है	•••	१२०
भगवान्का मधुर प्रसाद		૮૫	य		
भला वही जिसका अन्त			यज्ञका प्रत्येक अंग संकेत	पूर्ण है	६४
भावनाको स्थिर करो	***		यज्ञकी ह वि आध्यात्मिक	स्यागव	FT
भौतिक देवता		_	संकेत है		९६
•	•••	174	यात्राका आरम्भ		
म					
मथुराकी शताब्दीका ना	यक	ч	व		_
मनकी आन्तरिक सत्ता		38	वाग्द्वीका आत्मद्शन	•.•	
मनकी सत्ता		33	वाणीका देवतयोग		
मनुष्यका परम छक्ष्य		9.99	वाणीका विस्तार		9-97
सनुष्योंमें हंस		384			
मनो बलका स्रोत		. २५	विज्ञान और ध्यानमें रु	चि	. ১६

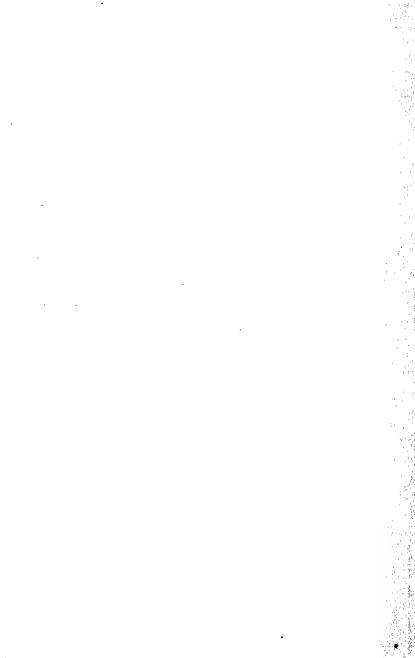
विषय		<b>ब्र</b>	विषय	पृष्ठ
विद्याका लक्ष्य		<b>७</b> ७	सत्संगकी महिमा	३४३
विद्वानोंका आदर्श	•••	<b>५</b> ९	सद्गुरु अविद्या नाशक	188
विश्व-प्रेम		१७५	सन्तोंसे दोह	999
वेद अनुभवका मार्ग बत	ाता है	206	सरलताकी महिमा	
वेद और सरस्वती महत्त्व		४९	सरस्वतीका प्रसाद	
वेदका उचादरी	•••	90	सरस्वती स्नानका फल	
वेदका पवित्र वचन दिन्य		हे ९८	सर्वं प्रिय विद्वानका स्वरूप	46
वेद चार भी हैं और एक		८२		૧ુપુલ
वेदसे बुद्धिकी महिमाका	ज्ञान	80	साधककी आत्म चेतावनी	_
वैदिक जीवन-नीति	***	354	_	३७२
वैदिक संकल्प दर्शन	…૬	३-९४	सामाजिक सज्जनताका मूल प्रेम	
হা			सामाजिक साक्षरता	
शताब्दी दृर्य	***	ફ	सार्वजनिक आश्वासन	९९
शताब्दी रहस्य	***	9	0 0 0	१७३
शताब्दी संदेश		९	सूर्यकी रिक्मयोंके साथ बुद्धिका	
शरणागतकी टेर	•••	୬୪	सम्बन्ध	૪ર
शान्तिका सन्देश	***	300	*	
स		i	सोमका वत स्वाभाविक सत्यप्रियता	•
सन्ना साधक		92	स्वामाविक सत्याप्रयता	344
सत्यका व्रत	•••	989	ह	
सत्संग और मित्रभाव		386	हमारे जीवनका आदर्श	330
सत्संग और सज्जनता	••,	383		180

## हैं अल्लक्ष्यक्षक्षक्षक्ष्यक्षित्र वेदिकाश्रम ग्रन्थमाला लाहोर क्षित्रक्रक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्ष

Mary Carlotter to

# अथान्तः करणनिरूपणो नाम

प्रथम उच्छवासः।



#### \* ग्रो३म् \*

### प्रथम खएड

### यन्थारंभानिर्देश ।

नत्वा कोटिशो देवं अवनेशं दयानिधिम्। पुण्यो रच्यते ग्रन्थो वेदसन्देशनामकः ॥ १॥

श्रर्थ—भगवन् ! श्राप प्रकाशस्वरूप ब्रह्मागुडके पति द्याके भगुडारको वारंवार नमंस्कार करके पुगय वेदसन्देश नाम वाले ग्रन्थको रचता हूं । श्राप हीकी द्यासे यह प्रयत्न सफल हो ॥१॥

सन्देशी तजुतत्त्ववर्णनपरावादी हि भागे गती, निर्मास्येऽथ विभो ! तवैव कृपया भागं द्वितीयं शुभम् । पाविज्यामृतवर्षणेन खल्ज यः क्ववैश्व पुण्योदयम्, अन्तर्नेत्रनिरूपणेन सफलो भूयात् सतां प्रतिये ॥ २॥

श्रर्थ—हे विभो ! प्रथम भागमें श्रात्मतत्त्व तथा शरीरका वर्णन करके, श्रव तेरी रूपासे दूसरा भाग श्रारंभ करता हूं। भगवन् ! द्यादृष्टि करो ताकि श्रन्तः करणके निरूपण्ढारा, जगतमें पवित्रताके श्रमृतकी वृष्टि करता हुआ, यह प्रन्थ पुण्यका विकास करे श्रौर सज्जनोंके प्रेमका पात्र बनारहे॥ २॥

### मानसी प्रार्थना।

संसारेऽतिविचित्रचिते दुष्टश्रेष्ठविभागयुते । दुःखं हर्त्तुमयीश हरे ! महां देहि बलं सुखदम् ॥ १॥ प्रार्थ—भगवन, संसार प्राति विचित्र है। दुष्ट तथा श्रेष्ठका श्रद्भुत विभाग पाया जाता है। हे हरे ! मुक्ते दुःख-नाशक, सुख-दायक बल प्रदान करो, तािक में श्रपनी मंगल-कामनाश्रोंको पूरा कर सक्तं॥ १॥

चित्तक्केशकरं सकलं दौर्बल्यं मनसश्च मलम् । हीनाचारविचारदलं, किं हर्त्तुन्न हर् त्वमलम् ॥ २ ॥

श्रर्थ—महाराज, मेरी दुर्बजता श्रौर मनकी मिलनता मेरे चित्तको क्रेश देती हैं। हरे! हीन श्राचार तथा विचारके वैरि-दज़को क्या श्राप हटा नहीं सकते?॥२॥

ज्ञात्वाप्यंग विभो हृद्यं व्यामूढं मम चापि चलम्।

मिथ्याचेन तवास्ति द्या, तत् किम्मां न हरे द्यसे ।।३॥ धर्थ-हे प्यारे प्रभो ! श्राप जानते हो, मेरा हृद्य कितना चंचल धौर विद्तेप-प्रस्त है। भगवन, श्रापकी द्यालुता सच्ची है। मेरे ऊपर भी श्रवश्य द्या कीजिये॥३॥

बाधन्ते भवसागरपा नानापापरुजानिवहाः । त्राणं धेहि वचः शृणु मे त्वं राजन् जगदीश हरे ॥४॥ श्चर्थ—हे भवसागरमें रत्ना करने वाले, नाना प्रकारके पाप और रोग पीड़ा दे रहे हैं। रत्ना करो। हे राजन, जगदीश, हरे, मेरी टेर सुनो ॥४॥ बाह्यों वा यदि वान्तरिकः स्यात्तापो मम तात हरे।
वेदार्थेन विचारज्ञपो मूलं नाशय तस्य गुरोः ॥ ५ ॥

ब्रर्थ —हे पितः, मुक्ते ब्रन्दर ब्रौर बाहिर ताप तपा रहा है। हे सच्चे गुरो, छपा करो कि मैं वेद मन्त्रोंके ब्रर्थीके विचार तथा मननसे सारे सन्तापके मुजको नाश कर सक्तं॥ ४॥

आनन्दामृतपुञ्ज न किम्मत्तापोपशमं कुरुषे ।

पुत्रे दुःखमथोपगते दृष्टो नैव पिता सुखयुक् ॥६॥

श्रथ—हे श्रानन्दामृतके पुंज, मेरा ताप क्यों नहीं हरते हो ? ऐसा तो पिता कभी नहीं देखा कि जो पुत्रको दुःखी देखता हुश्रा भी श्रपने श्रानन्दमें निमग्न रहे ॥ ६॥

ज्योतींष्याददते सततं त्वत्तो भासमथापि हरे !

चैत्तं मे न तमस्तद्ये नाशं याति तदापि कथम् ॥ ७ ॥

श्रर्थ—हे हरे ! सब सूर्य श्रोर तारे तुम्हींसे प्रकाश धारण कर रहे हैं। पर कितने दुःखकी बात है कि मेरे चित्तका श्रन्धेरा नष्ट नहीं होता। भगवन्, रूपा करो, रूपा करो। प्रकाश हो, प्रकाश हो। पापका नाश हो। पुग्यका उदय हो। भगवन्, सच्ची भावनाएं पैदा हों। कुटिल वासनाएं शान्त हों॥आ

🕉 शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

### द्वितीय खग्ड।

### मथुरा शताब्दीका नायक।

महात्माजीकी कुटियाका द्वार लगभग एक मास बन्द रहा। मायाराम तथा उसके साथियोंके जीवनमें श्रद्भुत पलटा देखकर, सारा नगर महाराजका गुणानुरागी तथा भक्त बन चुका था। वे एकान्तसे प्यार करते थे, परन्तु यह भी चाहते थे कि शरीरको उपकारमें ही जगाये रखें। द्वारका खुजना था श्रौर जोग दर्शनोंको श्राने जग गये। सांसका समय तो विशेष भीड़का समय था। उन्होंने सब प्रेमियोंके प्रेम-भरे भावका स्वागत किया श्रौर मुसकराते हुए बोले।

महा०—सुनाओ, सज्जनो, क्या समाचार है ? पिक्का मास कैसे बीता है ?

वस्तु०—भगवन् ! सब कुशल है। हृद्यमें वियोगकी तीव ज्वाला भड़क रही थी। आपके दर्शन पाकर ऐसे प्रतीत होरहा है कि अमृतपान करके शान्ति लाभ कर रहे हैं। शताब्दी महोत्सवकी यात्रा कैसी रही ?

माया०—सुना है, मथुराके बाहिर दूसरी मथुरा बस रही थी। प्रान्त २ से लोग गये हुए थे। बड़े २ बाज़ार झौर चौक बने हुए थे। भीड़का क्या ठिकाना था? कहते हैं, कई मील जंबा जलूस निकला। महाराज, क्या यह सत्य है?

महा०—ठीक है। उस सप्ताहमें तो यह प्रतीत होता था कि सारा जगत आर्य बन कर, अपने गुरु, महर्षि द्यानन्द-सरस्वतीकी पवित्र स्मृतिको अपने हृद्य-मन्द्रिमें जागृत करनेके लिये वहां आ पहुंचा है। सब लोग ब्राह्म मुहूर्त्तमें उठ पड़ते थे। प्रातःकालसे लेकर आधी रात तक चहल पहल लगी रहती थी। मजन-कीर्त्तन और यक्षोंका क्या आनन्द बना हुआ था! बड़ा मगडप और उसके चारों धोर दूसरे मगडप जनतासे खचाखच भरे रहते थे। कहीं साधु, महातमा प्रचार कर रहे थे, कहीं पिगडत-परिषद् लग रही थे श्रौर कहीं श्रन्य सभापं होरही थीं। कालेजों, महाविद्यालयों श्रौर गुरुकुलोंकी विभृति भी पूरा पूरा प्रकाश कर रही थी।

श्चन्त०--महाराज, इतने बड़े समारोहका मूल रहस्य क्या था ? वह क्या शक्ति थी जो इतने लोगोंको देश, विदेशसे घसीट कर वहां ले गई ?

महा०--क्यों, सत्यकाम, बोलो ।

सत्य०—भगवन, यह एक निरालाही मेला था । दूसरी यात्राश्रोंमें कोई मन्दिर, कोई नदी-तट, कोई गुफा, कोई पर्वत या कोई श्रन्य स्थान लह्य होता है। परन्तु यहां सहस्रों नर, नारी भौतिक लह्यके श्राकर्षणके विना ही पहुंचे। इस वायुमें कोई शिक थी। यहां कुच्छ श्रन्दा प्रभाव था। न यह यमुनाका भ्रेम था, न यह वजके मन्दिरोंका सौन्दर्य था श्रौर न यह किसी कुटिया या भवनका चित्र था, जो इतनी जनताको वहां खैंच ले गया। सहस्रों लोगोंने न नदीमें स्नान किया, न मन्दिर देखे श्रौर न कुटियाएं दूग्ढीं। महाराज, यहां तक तो में स्पष्ट देख रहा हूं। इसके श्रागे श्रभी कुच्छ श्रौर प्रेरणा सी प्रतीत होती है, परन्तु वह क्या है, यह कह नहीं सकता।

महा०—सत्य है। शताब्दी-यात्रामें कोई भौतिक प्रेरणा न थी। यह मानसिक विचारका आकर्षण था। यह एक मनुष्यको दूसरे मनुष्यसे विशिष्ट बनाता है। स्वामी द्यानन्दजी महाराजका शरीर आति सुडौल और सुन्दर था। परन्तु उस विशाल कायाके प्रतापसे खिचे हुए लोग मथुरा नहीं पहुंचे। जनता उनके विचारोंकी पूजा करती हुई उन्हें आपना गुरु मान चुकी है।

द्यतः स्वामीजीके नामकी जब पूजा होती है, तो समको कि उनके ऊंचे भावों और शुद्ध विचारोंकी पूजा होती है । प्रभु ने प्रत्येक शरीरके अन्दर एक सुद्तम अन्तःकरणाकी रचनाकी है। इसके द्वारा हम अपने अन्दर विचार पैदा करते, संकल्प विकल्प उठाते, भिन्न २ पत्नोंके सत्यासत्यका निर्णय करते, भूतकी बातोंका कोषकी भान्ति संग्रह करते, भविष्यत्के कार्यक्रम बनाते श्रौर भ्रन्दरही अन्दर सहस्रों आशायोंके पुल बांधते और तोड़ते हैं। नेत्र, श्रोत्र, नाक श्रादि बाहिरके करण हैं। हम सारे जगतका श्रानुभव पांच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा देखने, सुनने, संघने, चखने श्रौर द्यूनेसे प्राप्त करते हैं। जिनके नेत्र नहीं, मानो उनकेलिये जगतका पांचवां भाग नहीं रहता। उन्हें रंग बिरंगके फूल, फल, जता, गुल्म, पर्वतीय दृश्य, निद्यों तथा निर्फरोंके मनोहर स्रोत, प्राकृतिक तथा कृत्रिम सुन्दर ग्राकार, विशाल भवन ग्रौर महल वैसे श्राकर्षित नहीं करते जैसे कि वे श्रांखोंवालोंको सहस्रों कोसोंसे खींच लाते हैं। श्रतः बाहिरकी इन्द्रियोंका शक्तिशाली होना जीवनके श्रानन्दकी पूर्णताकेलिये श्रत्यावश्यक है। ज्ञाने-न्द्रियोंके साथ हाथ, पांव ग्रादि कर्मेन्द्रियां भी हैं।

नेत्र श्रादिके द्वारा बाहिरका जगत रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्दके रूपमें हमारे श्रन्दर प्रतिबिंबित होरहा है। हम इससे दो प्रकारसे प्रमावित होते हैं। एक श्रवस्थामें प्रति-बिंब मनोहर प्रतीत होता है श्रोर बाह्य प्दार्थोंको ग्रहण करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है। दूसरी श्रवस्थामें प्रतिबिंबकी भयानकता बाह्य पदार्थोंमें श्रक्वि कर देती है। इस तरह प्रत्येक प्राणिके सामने प्राह्य श्रोर त्याज्य संसार बनता चला जाता है। مستعدد المح والمرسدة المالية الكالم المرارية

जिनके शरीर पुष्ट हैं, इन्द्रियां बिल हैं, वे अपने पुरुषार्थसे ब्राह्य का ब्रह्म तथा त्याज्यका त्याग कर सकते हैं। दूसरे निर्वल प्राणी यहां नाना प्रकारके कष्ट पाते हैं। सुन्दर प्रतिर्विब देखकर जी करता है कि अमुक वस्तु ले लें। परन्तु न पांव चलते हैं, न हाथ हिलते हैं। न पुरुषार्थ होता है, न धन ब्राता है। पुरुषार्थके विनाकोई भी पदार्थ पात नहीं होता। पामर, पंगु, अपाहज, निहत्थे बनकर जीवन व्यतीत करना सचमुच नरकमें निवास करना है।

लोक० — ठीक है, ठीक है। तभी तो आपने मथुरा जानेसे पूर्व शरीर के रक्षणके विषयमें वेद भगवान का परम परम पावन सन्देश सुनाया था। अ

मक्षा परन्तु प्यारो, जीवनकी पूर्णता अन्तःकरणकी पूर्णतापर निर्भर समभो। शताब्दी-महोत्सवकी सफलता पूर्ण अन्तःकरणके स्वामी, महर्षि द्यानन्दजीकी विजय घोषणा है। मनुष्य शारीरिक बलसे मोहित होता है और प्रभुने महाराज द्यानन्दको वह भी पर्याप्त दे रखा था। परन्तु मनुष्यकी वास्तव पूजा उसके आन्तरिक चमत्कारोंसे होती है। और स्वामी जीका जीवन इस सुन्दरताका भी बढ़ चढ़कर धनी था। शरीरको उन्नत न करना पाप है क्योंकि इस कार्यको करना तो पशु भी जानते हैं। मनुष्यका मुख्य लच्च मानसिक तथा वैज्ञानिक विकास ही समभना चाहिए। इसी विकासकेद्वारा ही वह पशु-पनसे ऊपर उठता है। मनुष्योंमें जो व्यक्ति इस विषयमें विशेष रूपसे बढ़ जाता है, वह जनताका पुज्य गुरू तथा नेता गिना

<sup>\*</sup> वेद-सन्देश, प्रथम भाग के द्वितीय अध्याय की ओर संकेत है।

जाता है। महाराज द्यानन्दके जीवनकी पवित्रता, संकल्पकी दृढ़ता, विचारकी विशालता, चित्तकी उदारता, विश्वासकी स्थिरता श्रादि श्रनेक गुण उनके श्रन्तःकरणकी विभृति तथा महिमाका प्रकाश करते हैं। इसी लिये संसार शनैः २ उनके जीवनसे परिचित होकर उनके चरणोंमें श्रद्धासे पूर्ण होकर भुकता चला जाता है।

सत्य०—महाराज, श्रव सारी बात ठीक २ खुल गयी । शताब्दी महोत्सवका रहस्य समभमें श्रागया है । यह सारी श्रन्तःकरणकी ही महिमा है।

वस्तु०—भगवन, ग्रब श्राप विश्राम करें । यात्राके कारण थकावट होरही होगी ?

माया॰—महाराज, कोई सेवा हो, तो बतावें, ताकि हम भी कृतार्थ हो सकें।

महा०---नहीं, सब ठीक है। समय पर आजाया करें। कलसे पहिलेकी तरह प्रतिदिन शास्त्र-चर्चा हुआ करेगी। अब जाइप नमस्ते २।

सत्य०-पानी गर्म होकर श्रागया है। हाथ पांव धो लीजिए। महा०-बहुत श्रच्छा।

## तृतीय खएड

#### अन्तःकरणका स्वरूप

लो०—महाराज, कल जबसे मैं यहांसे गया हूं, यही सोचता रहा हूं कि जिस अन्तःकरणके विकासका आप वर्णन करते रहे हैं, वह क्या है। सच तो यह है कि मुक्ते तो उसके होनेका भी निश्चय नहीं।

महा०—तो, पहिले यही विचार लेना चाहिये।

माया०—भ्रापकी श्रनुमित हो; तो मैं इस विषयमें कुच्छ कहूं। महा०—( प्रसन्न होकर ) बहुत श्रद्धा ! श्राप भी तो सारी श्रायु वेदांत सुनते रहे हो। श्रवश्य कहियेगा।

माया०—महाशय जी, श्रिधिक सुद्तम जानेसे क्या ? सब इन्द्रियद्वार खुले होनेपर भी एक समयमें एक ही प्रकारका संस्कार-क्वान होता है।

लोक०—कृपया खोल २ कर स्पष्ट कहियेगा । मेरेलिये विषय नया है।

माया०—बहुत अच्छा देखिये। आप कई वार अपने कार्यमें इतने जगे हुए होते हैं कि आपको अपने आस पास आते जाते लोगोंका कुच्छ पता नहीं रहता। यदि उस समय कोई किसीके विषयमें आपसे कुछ प्रकृता है, तो आपकी कोरी आंखें उसे सुखा उत्तर सुना देती हैं। यहां तक होजाता है कि मोटर आदिका शब्द भी सुनाई नहीं पड़ता। तनिक विचार तो करें कि इसका क्या कारण है।

लोक०—हां होता तो श्रवश्य है। पर मैंने कभी इधर ध्यान नहीं दिया। शायद श्रोत्र उस समय काम न करते हों।

माया०—नहीं, यह ठीक नहीं। वायुमें शब्दकी लहरें चलती रहती हैं। जहां कान खुले होंगे, यहां उनका भ्रवश्य प्रभाव पढ़ेगा। हां, जब सीसेसे उन्हें पूर दिया जावे या भ्रौर कोई रोग भ्रादि हो जावे तो दूसरी बात है। लोक०--यह हो सकता है, कि श्रात्मा एक समयमें एक ही प्रकारका ज्ञान ग्रहण करना चाहता हो।

माया०-बधाई हो। यह श्रात्मवादी कबसे बने ?

लोक०—भाई, ठीक २ उत्तर दो। उपहास वयों करतेहो ? जिन गुरुवरोंकी दयादृष्टिने तुम्हें मायावादके अन्धेरे कुएंसे बाहिर निकाला है, उन्हींके उपदेशोंसे मैं भी निहाल हो रहा हूं। अब मैं अपने आपको नित्य तत्त्व समकता हूं। मैं शरीर नहीं हूं।

माया०—बड़ी प्रसन्नताकी बात है। त्रमा करना, मैंने चित्त दुखानेके लिये उपहास नहीं किया था। अच्छा, सुनिये। आत्माकी शक्ति तथा सत्ता सकल देह को प्रभावित कर रही होती है। देखनेकी शक्तिसे रहित नेत्रोंमें भी भपकना आत्माकी शिक्ति परिचय देता रहता है। अब काले, पीले रंगोंके संस्कार अन्दर नहीं जाते। परन्तु तनिक कोई चस्तु सुभे, तो उसी समय स्पर्शका संस्कार अन्दर चला जाता है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत हुआ कि आत्मा समान रूपसे सब इन्द्रियोंके संस्कार प्रहण करनेके लिये तथ्यार रहता है। ज्ञान उसका धर्म है और सदा वीज रूपसे उसमें विद्यमान रहता है। बाहिरके संस्कारों-के लिये उसे बाहिरकी इन्द्रियोंको साधन बनाना पड़ता है। इस लिये वह कठिनाई बनी रहेगी। अनेक द्वार खुले हों, फिर क्यों विशेष ज्ञान एक ही द्वारसे किसी समय अन्दर प्रवेश करता है?

लोक०—संसारमें ऐसे भी तो मनुष्य होते हैं जो एक साथ कई कार्य कर लेते हैं। वे पुस्तक पढ़ते, वार्ते सुनते छोर करते छोर दूर से घड़ियालके शब्दोंको गिनते भी रहते हैं। इन भिन्न भिन्न वातोंके संस्कारोंको ज्ञात्मा एक साथ प्रहण करता जाता है। इस लिये श्रापका सारा कथन ही कच्चा पड़ जाता है।

महा०—न लोकेश जी, यह ठीक नहीं। त्र्यापने पहिले ठीक प्रकारसे ग्रारम्भ किया था । मायारामजी, त्र्यापने शास्त्रोंका ग्रन्जा मनन किया है। मुक्ते बड़ी प्रसन्नता हुई है।

माया०—आपकी रुपादिष्ट ऐसी ही बनी रही, तो मैं भी एक दिन ऋषियोंके सामने मुंह दिखा सकूंगा। भगवन, कुच्छ कालसे नित्य स्वाध्यायका मैंने बत धारण कर रखा है। भोजन तो न हो, पर इस नियममें विझ नहीं हो सकता। संस्कृत नहीं जानता, इस लिये उतना लाभ तो नहीं उठा सकता। पर, हां, आर्थ विझानोंने बड़ा उपकार किया है। उनके भाष्यों तथा अनुवादोंने बड़ा सहारा दिया है।

वस्तु०—ग्रौर, वहां क्या करते हो, जहां एक परिडत कुड़ ग्रर्थ करता है ग्रौर दूसरा कुड़ ?

माया०—हां, यह बात तो ठीक है। पर मैंने अभी आरम्म ही किया है। जब ऐसी समस्या आवेगी, प्रभु अपनी रूपासे कोई (महात्माजीकी ओर संकेत करके) आप्त गुरु भी मिलाही ठेंगे।

महा०—नहीं २, बस्तुस्वरूप, घबरानेकी कोई बात नहीं। शास्त्रका एक बड़ा भाग ऐसा है, जिसके द्रार्थोमें कोई विशेष द्रान्तर नहीं होता। निरन्तर द्राभ्यासी शास्त्रोंके साधारण भावको स्वयं भी भांप लेता है। फिर वार्तालाप तथा श्रवणसे भी कई गांठें खुलती हैं। जो पढ़ता ही नहीं, वह विद्वानोंके पास पहुंचकरभी कोई प्रश्न नहीं कर सकता। पढ़नेसे शंकाएं

一般教養養養物をあるとなり、 ノーノーではなる人が対対ななどをおからいれ

उत्पन्न होती हैं थ्रोर श्रधिक जाननेकेलिये मन तय्यार होजाता है। सबको चाहिये कि इसी तरह संस्कृत श्रथवा श्रार्य भाषाको सीखें थ्रोर स्वाध्यायका नियम धारण करें। यह विद्या तथा शास्त्रोंके प्रचारका उत्तम उपाय है। मायारामजी, बहुत श्रच्का प्रयत्न है। क्यों, लोकेशजी, श्रापका प्रश्न ठीक हुआ, कि नहीं?

लोक०—कुच्छ होगया, कुच्छ श्रापकी कृपासे होजावेगा।
महा०—बड़ा मोटा उदाहरण है, परन्तु इससे श्राप समक्त
जावेंगे कि कैसे एक साथ श्रनेक ज्ञान नहीं हो सकते। यह लो,
इस पुस्तकके चार पत्रोंको इकट्ठा पकड़ो और एक श्रोरसे सुई
मारो। कर, दूसरी श्रोरसे उसका सिरा निकल श्राता है। सुईके
मारने श्रौर उसके श्रार पार निकल जानेमें कोई समयका
श्रन्तर प्रतीत नहीं होता। परन्तु थोड़ा सा विचार इस प्रतीति
को सुठलानेकलिये पर्याप्त होगा।

देखों, चारों पत्रोंके मध्यमें तीन अन्तर हैं। चाहे दो पत्रोंपर कितना भी भार डालों, वे एकजान नहीं बन सकते। दो परमाग्रुओंके बीचमें भी अन्तर रह जाता है। यह अन्तर छोटेसे छोटा भी क्यों न हो, सुईको उसमेंसे पार होनेकेलिये कुच्छ समय तो चाहिये ही। इसी प्रकार दूसरे और तीसरे अन्तरमेंसे निकलते हुए सुई कुच्छ न कुच्छ समय लेगी। यह समय थोड़ा हो या बहुत हो, है तो सही। एक पग धरनेमें एक पल लगता है और योजन भर चलनेमें दो घड़ी समय बीत जाता है। दो घड़ीके सामने पल क्या है? फिर भी वह अभावरूप नहीं गिना जाता। जिस प्रकार इन उदाहरणोंमें समय होता हुआ भी प्रतीत नहीं होता, ऐसेही

श्राति सद्म मन श्रानकी श्रानमें नेत्र श्रादि इन्द्रियोंसे जुड़ता श्रोर श्रलग हो जाता है। प्रतिक्तण ऐसा हो रहा है। कुच्छ मनुष्योंमें दूसरोंकी श्रोपेक्षा इस जोड़ तोड़का श्रभ्यास श्रधिक पाया जाता है। हमें ऐसे प्रतीत होता है कि मानो, वे नेत्र, कान तथा वाणी श्रादिसे एकही समयमें कार्य कर रहे हैं। परन्तु वस्तुत: सुईके तीन श्रन्तरोंमेंसे एक साथ पार निकल जानेके समान इसे भी श्रसंभव जानो।

लोक०—यहतो खुब समभ लिया। तनिक श्रौर विस्तार करिये।

महा०—बस, श्रव श्रन्तःकरणके माननेमें क्या कसर रही ? नहीं तो यह समभमें नहीं श्राता कि क्यों श्रातमा, इन्द्रिय श्रीर संसारके परस्पर जुड़े रहनेपर भी, कभी केवल रूपका श्रीर कभी शब्दका हमें श्रान हो । यदि श्रानके होनेमें यह तोनहीं कारण हैं, तो या तो सदा प्रत्येक प्रकारका श्रान बना रहना चाहिये श्रीर या कोई भी श्रान न होना चाहिये। परन्तु ऐसा होता नहीं। श्रतः या तो भट श्रातमामें कोई निर्वलता होजाती है, या नेत्र श्रादि इन्द्रियोंमें विम्न खड़ाहो जाता है। यह भी श्रसंभव है। क्योंकि श्रातमा नित्य, विकार रहित तत्व है श्रीर नेत्र श्रादिका भी श्रचानक ठीक न रहना श्रीर भट पीछे ठीक होजाना श्रसंगतसा प्रतीत होता है। इस लिये स्रिष्विं श्रातमा तथा इन्द्रियोंके बीचमें एक श्रीर माध्यम (Medium) माना है। इसीके जोड़ तोड़से श्रानकी उत्पत्ति श्रीर श्रनुत्पत्ति होती रहती है।

ग्रन्त०—हमारे सम्प्रदायमें तो इसे ही सब संस्कारों का ग्राधार माना है। बाहिरका जगत तो इसकी छायामात्र समभी जाती है।

सत्य०—तो क्या वह पुरानी चर्चा चलाने लगे हो ?

श्चन्त०—नहीं २ मनकी महिमाका केवल संकेत किया है। लोक०—भगवन, बड़ा सुद्दम विषय है। समक्त तो श्चागया है। पर श्चाज इतना ही रहने दीजिए।

माया०—महाराज, बहुत दिन होचुके हैं। श्राज श्रापके साथ मिलकर सन्ध्या करके जावेंगे।

सत्यकाम पानी ले आया। सबने हाथ पांत घोकर आचमन और इन्द्रिय-स्पर्श की विधि की और महात्माजीके साथ मधुर स्वरसे मंत्रोंका उच्चारण किया। तारे निकल चुके थे। सबने महात्माजीको और परस्पर नमस्ते की और अपने २ घरोंको चले गये।

# चतुर्थखएड ।

## मानासिक जगत्।

वस्तु०—भगवन, बाहिरके ज्ञानके संबंधमें तो अन्तः करणकी आवश्यकता खूब समभाजी । अब कृपया इसके आन्तरिक स्वरूपको भी समभा दें।

सत्य०—महाराज, अभी सोचते २ मेरे मनमें भी एक शंकासी उठ रही है।

महा०-वास्तवमें विषय बड़ा सुद्म है। मनका साज्ञात्कार

किसी २ योगयुक्त महात्माकोही प्राप्त होता है। हां, किहये, ब्रापका सन्देह क्या है?

सत्य०—महाराज, श्रापने पक वार बतलाया था कि श्रात्माका निवास इद्यमें होता है। इस लिये यह नहीं होसकता कि वह नेत्र श्रादिके साथ वारी २ से संयुक्त होता हो।

महा०—प्यारे, उस प्रकरण \* का फिर विचार करो। वेदादि सच्छास्त्रोंमें श्रात्म-ज्योतिका केन्द्र हृदयको माना है। जैसे कमरेमें चमकते हुए दीपककी शिखापर विशेष प्रकाश होते हुए भी, सारा कमरा साधारणतया प्रकाशित होता है, ऐसेही हृदयमें श्रात्मा विशेष प्रकाश करते हुए भी, चैतन्यगुणके ह्यारा सारे शरीरको नखाप्र पर्यन्त जीवन देरहा है †। योगी महात्मा प्रकाशके केन्द्रपर पहुंचनेका यह्न करते हैं। साधारण जनता साधारण जीवन-शकिसे ही श्रपना व्यवहार चलाती है।

इसलिये आत्म-ज्योतिका नेत्र आदिसे वारी २ से संयोग मानना ठीक न होगा । इसकी किरणें सारे शरीरमें संचार करती हुई स्थान २ का समाचार आत्मा तक पहुंचाती हैं। देखो, एक दृष्टान्तसे पता लग जावेगा। एक अध्यापक पढ़ा रहा था। विद्यार्थी ध्यानसे सुन रहा था। आंखें खुली थीं, कान लग रहे थे। अचानक उसके पांवकी अंगुलीपर चींटीने काटा। खाज हुई। हाथ हिलने लगे। आंखें पुस्तकपर और कान अध्यापकके शब्दपर हैं। अध्यापक मट प्रश्न कर देता है। लड़का

<sup>\*</sup> देखो, वेदसन्देश प्रथमभाग, अ० १, उ० १, मन्त्र ३-५ की ब्याख्या।

<sup>🕆</sup> कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद् ४। १९॥

人の教教を相関を問うして、 ちゅんのはんには

घबरा जाता है। उत्तर नहीं दे सकता। पहिले वाक्य तो समाप्त हो चुका है, परन्तु खाजके समय वाला वाक्य उसके ध्यानमें नहीं श्राता। पहिले श्रात्म-प्रकाशकी किरणें श्रौर मन पाठमें लगे हुए थे। श्रव श्रकस्मात मन खाजके केन्द्रकी ओर भागा हुश्रा है। श्रात्म-प्रकाश तो दोनों समय था, पर मन श्रव नहीं रहा। इस लिये शिष्य बाधित होकर मानता है कि "गुरुजी, मेरा मन त्रण भर खाज करनेमें लग गया था। इपया फिर पढ़ाइए"\*।

सत्य०—सत्य है महाराज, विषयकी गंभीरता भुलाए डाजती है। श्रव, वस्तुस्वरूपजीके प्रश्नकी श्रोर ध्यान कीजिएगा।

महा०—बेटा, बाहिर और श्रन्दर, दोनों जगतोंमें मनकी भ्रावश्यकता है। सुनो, एक श्राप-बीती वार्त्ता सुनाता हूं।

कुच्छ दिन हुए, एक नवयुवक मिलनेको श्राया । उसने बड़े प्रेमसे नमस्ते की । मैंने भी उसका स्वागत किया। घएटा भर वह मेरे साथ श्रपनी पढ़ाई श्रादिके विषयमें बातें करता रहा। मैं यह सारा समय यत करता रहा कि उसका नाम तथा परिचय मेरी स्मृतिमें श्रावे, पर क्या कहूं, मुक्ते न ही पता चला। उसकी श्रांखें परिचित थीं, उसकी श्राकृति परिचित थीं पर, तो भी उस समय मैं उसे पहचानन सका। सामने देख रहा था परन्तु बीते हुए समयका प्रत्यत्त श्रव साथ मिलता न था। दूसरे दिन एक श्रीर महाशयने ज्योंही उसका नाम लेकर कुच्छ पूछा,

<sup>\*</sup> विस्तारके छिये देखो बृ० उ० १ । ५ । ३ ॥ बड़ा सुन्दर और सरछ वर्णन है ।

तो बस, भट तीन वर्ष पहिलेकी सारी स्थिति सामने श्रागयी। भृत श्रौर वर्त्तमान प्रत्यत्त मिल गये श्रौर पुरा ज्ञान होगया।

श्रव सोचो कि श्रात्मा जैसा तीन वर्ष पूर्व था. वैसाही श्रवभी है। उसमें कोई भेद नहीं हुआ, तो क्या कारण है कि उस लड़केको पहचानता हुआ भी, मैं न पहचान सका । इस लंबे कालमें उसका कोई संबंध न रहा था। नये संबंधोंसे नये संस्कार उत्पन्न होते रहे थ्रौर वे पुराने संस्कार, न जाने, कौनसे कोनेमें धकेले गये। ऐसेही, श्रौर भी कई प्रकारके श्रनुभव होते रहते हैं। एक पदार्थको देखनेसे भय ग्रौर लज्जाका भाव पैदा होता है। दूसरेसे प्रसन्नताका विकास होता है। कभी २ विना देखे या सुनेही, भ्रन्दरही भ्रन्दर, संशय भ्रौर विचार उठते रहते हैं। भ्रपने भ्राप विचार ढीला पड़ जाता है, श्रौर फट, पकाभी कर लिया जाता है। रात्रिको सोकर उठते हैं। भ्रापने २ काममें लग जाते हैं। अञानक अन्दरसे पेरणा होती है। कोई अधूरा क्रोड़ा हुन्ना कार्य स्मरण करके, हाथमें लिये हुए कामको क्रोड़ कर, हम उसकी थ्रोर लग जाते हैं। यह संशय, निश्चय, स्मृति, विचार भ्रादि भ्रन्तः करणुके द्वाराही होते रहते हैं। भ्रभी भ्राप समम चुके हैं कि बाह्य जगतुके समस्त संस्कार प्रथम मनपर पड़ते हैं। श्रोर फिर श्रात्मा तक पहुंचते हैं। इस प्रतीतिके पीछे इन संस्कारोंकी एक रेखासी मनपर पद जाती है। पेसी रेखाएं भाठों पहर पद्धती रहती हैं । जहां संबंध गहरा होता है, वहां यह रेखाएंभी गहरी बनती हैं। कम संबंध वाली रेखाएं पतली रहती हैं। यह सारा कार्य भौतिक जगतके समानही होता है, क्योंकि मन्भी चेतनसे भिन्न, एक विचित्र भौतिक तत्त्व ही है।

श्रन्त०-चास्तवमें जो श्रापने श्रारंभमें स्वप्नके संबंधमें बताया था, स्वहमी श्रव पूरा २ स्पष्ट होने लगा है।

महा०—विल्कुल ठीक। यही संस्कारोंकी रेखाएं, मानो, दूसरी वार प्रत्यक्त कराती हैं। इसी तरह, जब हम पुरानी बातोंको समरण करना चाहते हैं' तो मानो, मनरूपी कुएंमें गोता लगाकर नीचे तहमें बैठे हुए पदार्थोंको ही ऊपर लाकर कहते हैं कि 'पहचान लिया। यह वह पदार्थ हैं'। लवण, कोइला ध्रादिकी कानोंकी तरह, यहांभी तह पर तह जमी चली जाती है। एक २ को हम खोदते चले जाते हैं ध्रौर इस प्रकार बीस २ वर्षकी बातोंको फिरसे समरण करके, मानो, दूसरी वार प्रत्यक्त कर सकते हैं। इस सारे कार्यक्रममें ध्रन्तः करणही मुख्य साधन है।

जीवातमा श्रखगड, एकरस, श्वाता है। यह श्रापने पहिले भली प्रकार समक्त ही लिया था । इसलिये भलना या फिर स्मृतिका नया करना उसका श्रपना स्वरूप नहीं होसकता है। पेसा माननेसे वह एकरस नहीं रहेगा। श्रौर देखिये, उन्माद श्रादिमें विल्कुल विस्मृतिका होजाना मनको श्रलग माने विना समक्तमें नहीं श्रासकता। यदि स्मरण तथा श्रानका संस्कार सीधा श्रात्माकोही होजाताहो, तो एक पागलको क्यों नहीं होता? उसका श्रात्मा तो सब श्रास्तिकोंके मतमें विकाररहित रहता है। वस्तुतः जैसे श्रांख खराब होजानेसे मनुष्य विरूप होजाता है, पेसेही मनकी विकलताका नाम ही पागलपन है।

<sup>\*</sup>देखो, वेदसन्देश, प्रथमभाग (संस्करण दूसरा) पृष्ठ ३०-३३ **।** 

<sup>†</sup> इसका विस्तार वेदसन्देश, प्रथम भाग, अ० १, उ० १, मं० ३ की ब्याख्यामें देखो । कुम्भसंस्करण, मूल्य १॥)

इसी तरह जितने श्रौर श्रान्तरिक कार्य्य होते हैं, उनमेंभी मनकी श्रावश्यकता श्राप समभ सकते हैं। भय, शोक, लज्जा, सन्देह, शिथिलता, निश्चय, सन्तोष, प्रसन्नता, धेर्य्य श्रादि श्रनेक नामोंसे इसी मनकी वृत्तियोंका वर्णन किया जाता है। किसी २ विचारकने मन, बुद्धि, चित्त श्रौर श्रहंकारमें भेद माना है। परन्तु साधारणतया हम इन सबको श्रन्तः करणके श्रन्दरही गिन सकते हैं। एकही पदार्थके वृत्ति-भेदसे श्रलग २ नाम पड़ जाते हैं।

माया॰—महाराज, क्या इस श्रद्धत पदार्थके विषयमें वेदभी कुच्छ वर्णन करता है ?

महा०—अवश्य। वेद सब सत्य विद्याओं का मृल-स्रोत है। उसीके संकेतों को लेकर, ऋषियों ने दर्शनों तथा उपनिषद् आदि शास्त्रोंमें विस्तार किया है। अब कलसे इसी प्रकारके प्रकरणों को लेकर, आपको वेद-सन्देश सुनाया करूंगा। मन बड़ा प्रबल पदार्थ है। इसके स्वरूपको ठीक २ समस्त कर, जिन व्यक्तियों ने इसके बलको सफल किया है, वे स्वयंभी सुखी रहे हैं और उन्होंने दूसरों को भी आनन्दित किया है। जहां हम शक्तिको अच्छे कामों में लगाते हैं, वहां उससे बढ़कर बुरे कामों में नष्टभी करते हैं। वेद भगवानका यह सन्देश है कि मनुष्य अपने मनोरथों को पवित्र बनावे। अस्तु, आज इस चर्चाको यहीं छोड़ते हैं। चलो, नदी-तीर पर पहुंचकर नित्यकर्मका पालन करें।

यह कहकर महात्माजी बाहिर जानेकी तय्यारी करने लगे। सत्यकामने उनका श्रासन श्रादि उठा लिया। कुच्छ श्रपने घरोंको चले गये, शेष साथ हो लिये।

<sup>\*</sup>शास्त्रीय वर्णनके लिये देखो, बृ० उ० १।५।३॥ बेदान्त० २।३।३२॥

# पंचम खएड मानस-सरोवर ।

#### -6×212+2-

सत्य०—गुरुजी, कल सायंको नदी-तीर पर क्या श्रानन्द था। चन्द्रकी मीठी श्रौर शीतल चान्द्नी शान्त जल-तलपर क्या श्रलौकिक सौन्द्र्य उत्पन्न करती थी! उस पवित्र वेलामें, एकान्त निर्जन स्थानमें कैसी शान्तिका साम्राज्य था! भगवन, चित्त श्रपने श्राप भगवानके चरणोंमें सुकता जाता था।

महा०—बेटा, सत्य है। ऐसी परिस्थितिमें ही रह कर मनुष्य प्रभुकी श्रद्धत महिमासे प्रभावित होता है। खुला श्राकाश, चन्द्रका प्रकाश, बेल, बृटोंपर पुष्पोंका विकास, निर्मल जलके शान्त प्रवाहमें होटी २ तरंगोंका विलास मृतप्राय हृदयमें उल्लास पैदा करनेके लिये कुच्छ कम सामग्री है ? सचतो यह है कि नगरोंके जमघटमें पड़े २ सड़नाही है। इस सड़ांदका श्रनुभव तभी होता है, जब हम कुच्छ समयके लिये इन तंग गलियों श्रीर क्र्वोंसे बाहिर, दूर निकल कर खुली वायुमें सांस लेते हैं। वहां जाकर जैसे भूमि श्रीर श्राकाश मिलते हुए दिखाई देते हैं, ऐसेही हमारे श्रपने तुच्छ, संकुचित जीवन भी श्रपने श्राप भगवानकी विशालतामें लीन होने लग जाते हैं।

माया०—ऋषियोंकी कितनी दूरदर्शिता थी कि उन्होंने प्रतिदिन ब्राह्मसुदूर्त्तमें उठ कर बाहिर इसी प्रकारके स्थानोंपर जाना प्रत्येक मनुष्यकेलिये धर्म बना दिया \*। वहां तो वस्तुतः श्रपने श्रापही ध्यान एकाग्र होने लग जाता है।

महा०—प्यारो, सुनो, इस सारी बातको वेद कितनी सुन्दरतासे वर्णन कर रहा है।

### (१) उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धिया विष्रो अजायत ॥ यद्य० २६ । १५॥

श्रर्थः—(गिरीणां) पर्वतोंके (उपह्वरे) एकान्त स्थानमें (च) श्रौर (नदीनां) निदयोंके (संगमे) संगम पर [जाकर] (धिया) ध्यानद्वारा [मनुष्य] (विप्रः) विस्तृत बुद्धिवाला (श्रजायत) हो जाता है॥१॥

सत्य०—महाराज, वास्तवमें यही बात है । रात्रिको निराजाही स्रानन्द था।

> महा०—प्यारो, वह चान्द श्रौर वह नदी तुम्हारे श्रन्दरभी है। लोक०—क्या, महाराज ?

महा०—मैंने कहा, हमारे अन्दरभी एक नदी बह रही है। उसमें कई नदियोंका पानी पड़ता और कई बार बाढ़ ला देता है, पर जब प्रवाह शान्त और निर्मल होता है, तो वह चान्दकी चान्दनीमें चान्दीका कप धारण किये होता है।

उप०-महाराज, तनिक खोल कर किहेये। यह सुनकर तो मेरा उपराम भी चौंक पड़ा है।

अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः ।
 सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः ॥ मनु० २ । १०४ ॥

महा०—सुनो, (२) पश्च नद्यः सरस्वतीमिप यन्ति सस्रोतसः । सरस्वती तु पश्चधा सो देशेऽभवत् सरित् ॥ यज्ञ० ३४। ११॥

श्रर्थः—( पंच ) पांच ( नद्यः ) निद्यां ( स-स्रोतसः ) प्रवाह-सिहत ( सरस्वतीं ) सरस्वतीमें (श्रिपि-यन्ति ) लीन होती हैं। ( उ ) धौर ( सा ) वह ( सरस्वती ) ( तु ) फिर ( पञ्चधा ) पांच प्रकार [ के प्रवाहोंसे भर कर ] देशमें ( सरित् ) [ बहती हुई ] नदी ( श्रमवत् ) वन जाती है ॥ २ ॥

प्यारो, पिछले दोनों दिन इसी सरस्वतीका ही तो वर्णन होता रहा है। यह देश हमारा शरीर ही है। उसके अन्दर पांच आनेन्द्रियां अपने २ जल लेकर दिन रात इस मानस सरोवरमें डाल २ कर इसे बहती हुई नदीका रूप दे रही हैं। यह कभीभी न रुकने वाला प्रवाह है। समय आता है जब रूप, गन्ध आदि इसमें बाढ़ पदा कर देते हैं। यह किनारोंको तोड़ने लग जाता है। समय आता है, जब यह निर्मल और शान्तरूपमें बहता हुआ, आत्म-रूपी चन्द्रके प्रकाशको प्रतिबिंबित करता है।

लोक०---श्रापका भाव यह हुआ कि श्रन्तःकरण एक प्रकारसे बड़ी भारी नदीके समान है।

महा०—सरस्वतीका भावही यही है। मन बड़ा वेगवान है कभी ठहरनेमें नहीं श्राता। यही मानसिक सरस्वती सब विद्या श्रौर विज्ञानकी खान है। इसको विकसित करने श्रौर उपयोगमें जानेसेही मनुष्य बड़ा बनता है। ऐसा करनेसेही वह मनुष्य नामको धारण करनेका श्रिधकारी होता है।

## (३) मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन । पितृणां च मन्माभिः ॥ ऋक्०१०। ४७।३॥

श्रर्थः—(नाराशंसेन) मनुष्योंद्वारा स्तृति करने योग्य (सोमेन) सोम (च) तथा (पितृणां) ज्ञानबृद्धोंके (मन्मभिः) मानयोग्य[गुणों] के द्वारा(नु) शीघ्र(मनः)मनको (श्रा-हुवामहे) [धारण करनेके लिये] ललकारते हैं ॥ ३॥

सोम श्रोषधियोंका सार है। शारीरिक विकासका
मुख्य साधन है। श्रातः प्रशंसाके योग्य है। सोये हुए बलको
प्रेरित करके, मुरदा मनुष्योंको भी खड़ा कर देता है। सोम चन्द्रको
भी कहते हैं। उसमें भी प्रेरणा-शिक श्राति श्राधिक पायी जाती
है। सोम प्रेरणाके मूल-स्रोत परमेश्वर को भी कहते हैं।
प्रेरणाका योग हो श्रोर विद्वानोंका उपदेश हो, तो मनकी
शिक्त का पता चलता है श्रोर मनुष्य उसे धारण करनेके
लिये उत्सुक होता है। परन्तु उसे विश्वास रखना चाहिये कि
मनोबल बाहिरसे नहीं श्राता। श्रन्दर हिपा पड़ा है। उसे ललकारो
श्रोर वह उठ खड़ा होगा॥

(४) आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्य दशे ॥ —४॥

श्चर्थः—[हे साधक] (ते) तेरा (मनः) मन (पुनः) फिर (श्चा-पतु) चारों श्चोर से प्राप्त हो [तािक द] (कत्वे) संकल्प (दत्ताय) बल (जीवसे) जीवन (च) श्चौर (सर्थे) स्वर्यका (दशे) दर्शन (ज्योक्) सदा [धारण कर सके]॥४॥

मन कहीं चला नहीं गया होता । विकासके संस्कार दब जाते हैं और मनुष्यको न सूर्य ध्रादि भौतिक शक्तियोंसे लाभ पहुंचता है और न वह अपने श्रापको बलवान समभता है। संकल्प दुर्बल हो जाता है ध्रौर वह निर्जीव सा प्रतीत होता है। उसे चाहिये कि इस दुर्दशाको परे धकेलकर नया जीवन धारण करे। फिर प्राकृतिक तथा मानसिक शक्तियोंका विकास हो ध्रौर लोकोपकारके लिये बल ध्रौर संकल्प पदा हो।

माया०—महाराज, जीवनका मुख्य चिह्न क्या है श्रौर उसको प्राप्त कैसे करें ?

महा०—वेटा, ग्रभी कहा है कि मानसिक गतिका ग्रिथिक होना ही जीवनका मुख्य चिह्न है। इसकी प्राप्तिसे ही हमारा मानव-देहका धारण करना सार्थक हो सकता है। नहीं तो, शेष पशुश्रोंसे हमारा किस बातमें विशेष होगा। इस मानसिक वेगके श्रमेक प्रकाश हैं। झान, विझान, वाग्मिता श्रौर स्फूर्ति इसीके रूपान्तर हैं। इन गुणोंका लाभ योग्य, धर्मात्मा, श्राप्त पुरुषोंके सत्संगसे होता है। वेदने श्रगले मन्त्रमें इन्हीं दोनों बातोंकी श्रोर ध्यान श्राक्षित किया है। सुनो,

(५) पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । . जीवं व्रातं सचेमहि ॥ — ॥

श्रर्थः—हे (पितरः) विद्याविज्ञानके रक्तक वृद्ध पुरुषो, [समाजमें ऐसा प्रबन्ध करो कि ] (दैव्यः) विद्याद्वारा प्रकाशित, देवता-स्वरूप (जनः) विद्वद्वर्ग (नः) हमें (पुनः) फिर [निद्रासे जगाकर ] (मनः) मनन-बजको (ददातु) प्रदान करे [ ताकि ] ( जीव ) जीते जागते ( वातं ) [ मानव-] समृहके साथ ( सचेमहि ) [ हम भी ] शामिल हों ॥ ४ ॥

सत्य०—गुरुजी, जब यह मानस-सरोवर सदा हमारे भ्रान्दर मौजूद रहता है, तो फिर इसकी प्राप्तिका क्या भ्रर्थ ? दूसरे, वह उपाय क्या है, जिससे कि एक वार प्राप्त हुआ २ यह कोष नष्ट न होने पावे।

महा०-बेटा, दां प्रकारसे प्राप्त वस्तु अप्राप्त-समान वन जाती है। प्रथम, हम स्वयं श्रशक्त होकर उसका उपयोग न कर सर्के । दूसरे, वह वस्तु ही विकार-युक्त होकर उपयोगके योग्य न रहे । शीतल जल बड़ा शक्ति-दायक गिना गवा है । परन्तु ज्वरके चंगुलसे श्रभी २ निकले हुए, दुर्बल व्यक्तिको उसके किनारे पर खडा करके बस्त्र उतार कर कृदनेके लिये कह तो देखें। श्रीर, देखों। प्यासका रोकना ठीक नहीं। परन्तु समुद्रके किनारे बैठा हुआ प्यासा मनुष्य क्यों चुल्लु भरकर पानी पी नहीं लेता ? वहां ग्रशक्ति ग्रौर यहां खारापन, सामने होती हुई वस्तुको निरर्थक कर रहे हैं। इसलिये निर्वेत शरीर, निर्वेत इन्द्रियां, निर्वेत श्रात्मा इस मनसे सुखके स्थानपर दुःख ही पाते हैं। ग्रीर, इसी तरह दुर्बेख मन बड़ेसे बड़े शूरवीरको भी एक पग आगे नहीं बढ़ने देता। इस रोगका उपाय शारीरिक, मानसिक श्रौर श्रात्मिक वतों श्रौर नियमोंका पालन करना ही है। जिस जातिमें इन बातोंका मान है, वहां निरन्तर विद्या, विक्षान बढ़ते हैं भ्रौर लोग सुखी रहते हैं। उनकी प्रजा बढ़ती है श्रीर संगठनका विकास होता है। इस विषयमें वेद क्या सुन्दर उपदेश करता है।

(६) वयं सोम त्रते तव मनस्तनूषु बिश्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि॥ — ६॥

श्रर्थः—हे (सोम) (वयं) हम (तव) तेरे (वते) नियमानुसार (तन्तुषु) शरीरोंमें (मनः) मानसिक बलको (बिभ्रतः) धारण करते हुए (प्रजावन्तः) प्रजासे युक्तहो कर (सचेमहि) संगठित होवें ॥ ६॥

भौतिक-सोमका वत शारीरिक मर्यादाकी रत्ता है। प्रेरणा के मृत, श्रात्मिक सोमका वत धार्मिक मर्यादाकी रत्ता है। दोनों मर्यादाश्रों की रत्ता से ही सर्वश्रकार का मानसिक बल बढ़कर व्यक्ति तथा समाजकेलिये हितकारी होता है। इस लिये, प्यारो, इस उपायका सहारा लेकर मनको जगाश्रो, श्रोर सम्पूर्ण उन्नति करो। प्रकाशमान परमात्माका सहारा इस भावसे युक्त हो कर लो, कि तुम्हारा मन प्रकाशसे युक्त हो जावे।

(७) स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्व-पत्यस्य शिक्षोः । अग्ने रायो नृतमस्य प्रभृतौ भृयाम ते सुष्टुतयश्च वस्तः ॥ ऋक्०३।१६।३॥

श्रर्थः है (श्रग्ने) प्रकाशस्वरूप भगवन्, [जो] (त्वोतः) तेरी कृपाका पात्र हो जाता है, (सः) वह (तेजीयसा) श्राति तेजस्वी (मनसा) मनसे [युक्त हो जाता है] (उत) श्रौर (स्वपत्यस्य) श्रच्छी सन्तान वाले (शिज्ञोः) दानशीलको (शिज्ञ) दो, (नृतमस्य) उन्नतिकारक (रायः) सम्पत्ति के

(प्रभृतौ ) प्रभावमें (भृयाम ) रहें (च ) ग्रौरेश ते क्राह्मेश व्यवः) पेश्वर्यके (सु-स्तुतयः ) कीर्त्ति-गायक [ बने रहें ] ! ॥ ७॥

प्रभुकी भक्ति, दानशीलता, शिल्लादिद्वारा सन्तानको उन्नत करना, निरभिमान हो कर पेश्वर्यको भले कार्यो में लगाना प्रभुके प्रसादका मृल है। श्रोर, उसका फल तेजस्वी मनकी प्राप्ति है। प्रभुकी महिमाको गाते रहना श्रपने मनको उन्नत करना है। ऊंचे विचार ही सदा सामने रहने चाहियें।

(८) यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य वातितृण्णं बृह-स्पतिर्मे तद्द्धातु । शं नो भवतु भ्रवनस्य यस्पतिः ॥ यज्ञ० ३६ । २॥

श्रर्थः—(मे) मेरे (चल्लुषः) नेत्र [श्रादि बाह्य इन्द्रियों | (हृद्यस्य) हृद्यका (यत्) जो (छिद्र) दोष [हो] (वा) या [जो] (मनसः) मनकी (श्रितितृग्णं) व्याकुलता [है] (तत्) वह (मे) मेरी [श्रुटि] (बृहस्पतिः) सब विद्याका पालक (द्यातु) पूर्ण करे। (यः) जो (भुवनस्य) ब्रह्मागुडका (पतिः) रत्तक [है, वह] (नः) हृमारे लिये (शं) कल्याण-कारी (भवतु) हो॥ ५॥

प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें कोई न कोई श्रुटि पायी ही जाती है। सच पूढ़ों तो मनुष्य-जन्म मिलता ही इस लिये हैं कि इन श्रुटियोंको पूरा करके अपने वास्तव लच्च तक पहुंच सकें। इसलिये साधकको उचित है कि सकल विज्ञानके स्वामीका सदा ध्यान करता हुआ, बुद्धिको बढ़ावे और अपनी न्युनताओं से ऊपर उठे।

उप०--परमात्मा तो कल्याग्यस्वरूप है ही। फिर इस प्रार्थना से क्या लाभ ?

महा०—बेटा, यह ठीक है कि प्रभु हमारा सच्चा रत्तक है। परन्तु हम अपनी स्वाभाविक अल्पञ्चता से कई वार अहितको हित; अकर्म को कर्म समस्त कर उसमें लग कर दुःख पाते हैं। उस समयके हीन संस्कारोंसे, मानो, हमारा सारा जीवन छिद्रमय होने लगता है। भगवानकी आराधनासे पुनः अपने स्वरूपका बोध होने लगता है। यही मानसिक पूर्णताका परम साधन है।

लोक०—महाराज, इस ग्रन्पश्चताका भी कोई उपाय है ?

महा०—वेद का यही सन्देश है कि विश्वानमयी सरस्वतीका
नित्य श्रमृतपान करते रहो। सश्चा श्रार्य सदा श्वानका प्रकाश चाहता
रहे। देखो, वेद सरस्वतीकी महिमाका कैसे विस्तार करता है।

(९) यस्ते स्तनः श्रशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः । येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तिमह धातवेऽकः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ यज्ञ० ३८। ४॥

श्रर्थः—हे (सरस्वति)(यः) जो (ते) तेरा (स्तनः) स्तन (शशयः) [ सबका ] श्राश्रयभूत [है,] (यः) जो (मयोभः) कल्याणकारी, (यः) जो (रत्नधा) रत्नोंको घारण करनेवाला, (यः) जो (वसुवित्) पेश्वर्यको प्राप्त करनेवाला (सुद्त्रः) श्रच्या दानकरनेवाला है [ श्रौर ] (येन) जिसके द्वारा [त्] (विश्वा) सब (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य पदार्थीको (पुष्यसि) पुष्ट करती हो (इह) यहां (तं)

उसे (धातवे) चूसनेकेलिये (ध्रकः) प्राप्त कराद्यो, [ताकि मैं ज्ञानामृतका पान करके ] (उरु) विस्तृत (ध्रन्तरिज्ञं) ध्रन्तरिज्ञके (ध्रजु-पिम) सदश होजाऊं॥ ६॥

कितने महत्त्वसे पूर्ण यह वर्णन है। संसारमें जो भी प्रहण करने योग्य धन, बल, पेश्वर्य श्रौर गुण श्रादि हैं, उन सबका मुल साधन सरस्वतीका पान करनाही है। ज्ञानके दुग्धसे ही श्रन्तरित्तके समान साधकका हृदय विकसित होसकता है।

#### सत्य०-यह बात नहीं समभा ।

महा०—प्यारे, श्रन्तरित्तके विस्तारका विचार करो । देखो, कितने जोकों श्रौर जीवोंका यह श्राधार बना हुश्रा है । सबे विद्वानका हृद्य विश्व-च्यापिनी सहानुभृतिसे पूर्ण होजाता है श्रौर उस विशाल हृद्यमें, मानो, सब प्राणियोंके लिये स्थान बन जाता है। यह झान झान नहीं, जो इस प्रकार श्रात्माको विशाल नहीं बनाता। इसी विशालताको धारण करता हुश्रा उपासक प्रभुका प्यारा बनता है।

(१०) यदाशसा वदतो मे विचुक्षुमे यद् याचमानस्य चरतो जनाँ अतु । यदात्मिन तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदापृणद् घृतेन ॥ घ्रथर्व ७ । ५७ । १॥

श्रर्थः—(यत) जो (श्राशसा) श्राशापूर्वक (वदतः) कहते हुए (यत) जो (याचमानस्य) मांगते २ (जनान-श्रनु) लोगोंमें (चरतः) फिरते हुए (मे) मेरे [श्रन्दर] (विचुन्नुभे) व्याकुलता पैदा होती है, (यत) जहां (मे) मेरे (तन्वः) श्रपने दीनताका जीवन महापाप है । दूसरोंकी दयाकी छोर श्राशापूर्वक देखना, उनसे मांगना और चापल्रसी करना निन्दनीय कर्म हैं। वेद स्पष्ट उपदेश कर रहा है कि ऐसा कर्म छशान्ति पैदा करता और स्वभावको हीन तथा तुच्छ वनाता है। साथही उपायभी बतलाता है। सरस्वतीका छाश्रयही सारे द्रिद्र-भावको दूर कर सकता है। जैसे घी पचाकर शरीर पुष्ट किया जासकता है मानसिक विकासके लिये और तुच्छताके नाशके लिये सरस्वतीका धारण करना, मानो, घृतद्वारा पुष्ट होना है।

सज्जनो, इस प्रकार यह मानस सरोवर हम सबके हृद्यमें ठाठें मार सकता है। साधारण लोगोंको इसकी शिक्तका ठीक २ अनुभव नहीं होता। मानसिक योगके सिद्ध करनेवाले महात्मा इसी शिक्तके आधारपर अलौकिक चमत्कारोंको करते हैं। हमें यदि यह निश्चय होजावे कि शरीर-बलसे सहस्रों गुणा बलका स्रोत अन्दर मौजूद है, तो फिर हमभी उत्साहसे पूर्ण होकर उसकी सिद्धिके लिये यह कर सकते हैं, क्योंकि यह एक गुप्त रहस्य है, इसलिये साधारण जनताकी इधर प्रवृत्ति नहीं होती। परन्तु जीवनकी पूर्णता तभी होगी, जब यह आंग पूर्णतया उन्नत होगा। वैदिकधर्मका यह महान उपकार है कि इसने इस प्रकार इस गुप्त कोषको खोलनेका सन्देश दिया है वैदिक ऋषि श्वान, विज्ञान और विद्याके भक्त हुए हैं।

वस्तु०--यह तो नयाही प्रकरण चला है । ग्रव ग्रांखें बन्द करके ध्यान करना होगा । महा०—घबराश्रो नहीं। बाहिरकी श्रांखोंके पीछे जो मानसिक श्रांख है, उसेभी खोलो। कोई श्रांख बन्द मत करो। बाहिरको श्रन्दर श्रौर श्रन्दरको बाहिर देखो।

जाश्रो, इन बातों पर विचार करो। कल पुनः श्रापको सुनाऊंगा कि किस प्रकार विद्या द्वारा सोये हुए मनको जगाना चाहिये।

समय श्रधिक होचुका था। सब भक्तोंने प्रेमसे नमस्ते की श्रौर उन पवित्र विचारोंको साथ लेकर श्रपनी २ राहली।



#### साधक की आत्म-चेतावनी।

वियापितं प्रगेतनं विहारिणा त्वया वयो, मदोत्कटेन योवनं रतौ रतेन धिग्ध्रवम् । प्रणाश्चतीरवर्त्तिनोऽपि पूर्ववत्

प्रदाहिनो, रुचिन धर्मकर्मणि प्रजायते कथं तव ॥ १ ॥

अर्थः—अरे ! तने खेल कृद्में बालकपनकी अवस्था खो दी, उन्मत्त होकर रित में लगे हुए यौवनको भी वस्तुतः खो दिया, धिकार है, पर क्या कारण है कि मृत्युके समीप पहुंच कर भी द उसी तरह विषयोंकी अग्निसे जलता है और धर्म कर्ममें तेरी रुचि नहीं पैदा होती ॥ १॥

दरिद्रदानपोषणं शरण्यपालनं सदा, खयम्भुपादयो रितः स्वधमलग्रता नृणाम्। सुखं करोति दुःखमातनोति कर्म निन्दितं, कृतिहि पुण्यपापतः प्रमावयेत्तन्भृतः ॥२॥

अतो मनुष्य साधक! प्रवर्त्तनामनागसि, प्रयत्नतस्त्वमातनु-परोपकारयुग्भव । दृथान्यपीडनं त्यज द्यादिभावसंयुतः, कियन्ति सन्ति भूतले प्रबुध्यसे दिनानि ते ॥ ३ ॥

श्चर्य—दिर्दों के दान श्चौर पालनसे शरण में श्चाय हुश्चों की रत्ता से, भगवान के चरणों में प्रेमसे श्चौर स्वधर्म के श्चाचरण से मजुष्यको सुख होता है। निन्दित कर्म दुःखका कारण है। पुराय, पाप के रूप वाला श्रपना कर्मही प्राणियों का नियामक है। श्चतः, हे साधक! पाप से बच। परोपकारी बन श्चौर पुराय में रुचि पैदा कर। द्यालु हो श्चौर दूसरों को वृथा मत सता। तुम्हें क्या पता, कितने दिन श्चौर तुने इस पृथिवीपर रहना है? कमर कस ले श्चौर मनके स्वरूपकां समक्तते हुए, श्चपने श्चन्दर सरस्वती को जगा, ताकि कल्याण हो॥२,३॥

# अथ सरस्वतीजागरणो नाम

द्वितीय उच्छवासः।

. . \* g. .

#### प्रथम खएड

# बुद्धि की प्रेरणा।

लोक०—महाराज, कल सायंकालसे मैं भ्रापने श्रन्दर एक विचित्र प्रेरणासी श्रनुभव कर रहा हूं।

महा०-हां, बेटा, कहो। क्या बात है ?

लोक - आपके साथ मिलनेसे पूर्व मैं समभता था कि धम बखेड़ों और भगड़ोंका नाम है। हर एकको अपने गुरुकी महिमा तथा पूजाकी चिन्ता लगी रहती है। अन्ध विश्वास और मिथ्या भावनाओं अधारपर लोग कुच्छका कुच्छ मानने लग जाते हैं। परन्तु आपके सत्संगने प्रवल नदी-प्रवाहकी तरह मेरे मानसिक किनारोंको तो इना आरंभ कर दिया है। कलसे तो मैं बिक्कुल हिल गया हूं।

सत्य०—क्यों, भ्राताजी, कल विशेष क्या घटना हुई ?
लोक०—वेदके अन्दरसे मनकी महिमा तथा झानकी
प्रशंसा सुनकर तो मेरा रहा सहा श्रविश्वास भी चला गया है।
मैं पहिले समसा करता था कि धमेसे श्रमिशाय यही होता है
कि मजुष्य तिलक, द्वाप, माला श्रादिको धारण करे। लंबी घोती
लगाकर 'नाम जपो, भाई, नाम जपो', 'राम २, भाई, राम' रटता
हुशा इधरसे उधर और उधरसे इधर दो चार वार धूमे और
लोग उसे भक्तजी, भक्तजी कहें। मेरा यह विश्वास था कि विद्या
श्रौर विद्यानके भक्तोंको श्रपनी कुटिया श्रलगही बनानी पड़ती

है। परन्तु कल तो यहांसे जाकर मेरी विचित्रही दशा थी। रातको सोये २ भी मैं महात्माजीके स्वप्न देखता रहा और मुक्ते कई वार प्रतीत होता था कि मैं किसी मन्दिरमें सरस्वती माताका दूध पीरहा हूं।

महा०—ऐसा होना ही चाहिये था श्राप लोगोंने वेदके पित्र सन्देशको सुने विना ही कई प्रकारके श्रम मनमें पैदा कर लिये होते हैं। यह ठीक है, दिखावेका स्वांग बहुत है। प्रत्येक धर्मके श्रन्दर लोग ऊपर २ तैरनेवाले श्रधिक मिलेंगे। परन्तु सर्वत्र कुच्छ न कुच्छ तत्त्वकी बातभी होती है, जिसे श्रच्छे परीज्ञक समभते श्रीर श्रच्छे साधक श्राचरणमें लाते हैं। वेदका धर्म इसी लिये पूर्ण है कि इसमें लोक श्रीर परलोक, दोनों प्रकारके जीवनके विषयमें पूर्ण उपदेश है।

लोक०-किस तरह, महाराज !

महा०—प्यारे, इससे पूर्व तुम सद्दम तत्त्वोंका वर्णन सुन चुकेहो। शरीरके विषयमेंभी पूर्ण उपदेश सुन चुकेहो। भला, सोचो तो सही, इन सद्दम बातोंको प्रहण करनेके लिये कितनी बुद्धि और कितनी विद्या चाहिये। इसी बुद्धिके आधारपर लोकमें पेश्वर्य प्राप्त होता है। इसीके ही सहारेसे आत्माके गुप्त रहस्योंका परिचय होता और मनुष्य मार्ग, कुमार्गको पहचानकर, अच्छे मार्ग पर चल सकता है। वेदकी पूर्णता इस बातमें है कि यह केवल शरीरको पुष्ट करना या आत्माका स्वरूपही केवल नहीं बताता, वरन शरीरपर राज्य करनेवाली और आत्मक्कानमें परम सहायक बुद्धिको बढ़ाने और पवित्र बनानेकोभी आवश्यक बताता है। वेदका धर्म विद्याका शत्रु नहीं । यह विद्याका परम सहायक है। देखो, हमारा गुरु-मंत्र क्यों मुख्य मंत्र समका जाता है। एक बालकको द्यार्य बनाते हुए, उसके कानमें किसी प्रकारकी गुप्त लीला नहींकी जाती। उसे किसी मनुष्यमें ऐसेही श्रद्धाके लिये नहीं कहा जाता। क्या किया जाता है? यशोपवीत देता हुआ, गुरु इस मंत्रका उपदेश करता है।

(१) तत्सवितु वेरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ११॥ यज्ज०३। ३४॥

श्रर्थ—[ हमें चाहिये कि हम ] (सवितः) [सर्व संसारको] उत्पन्न करनेवाले (देवस्य ) प्रकाशमान [ परमात्मा ] के ( वरेग्यं) वरने योग्य ( भर्गः ) तेजका ( धीमहि ) ध्यान करें ( यः ) जो [ प्रभु ] ( नः ) हमारी ( धियः ) बुद्धियोंको ( प्रचोदयात ) विशेष-रूपसे प्रेरित करता रहे ॥ १ ॥

सच जानो, वेद-सन्देशका यह सार है। उस नन्हेसे बालकको उपदेश होता है कि 'हे बालक, नित्य प्रभुके तेजसे अपने मानसिक अन्धेरेको दूर किया करो। नित्य प्रभुसे यही वर मांगा करो कि हमारी बुद्धि बढ़े। बुद्धिकी उन्नतिसे ज्ञानका दीपक प्रकाशित होता है। ज्ञानसे आत्माकी निद्राभी समाप्त होने जगती है। चारों ओर जागृतिही जागृतिका अनुभव होने जगता है। क्यों, सत्यकाम, गायत्री मंत्रका महत्त्व समभा?

सत्य०—गुरुजी, मुक्ते इस प्रकारसे पहिले नहीं सुका था। वास्तवमें वेदका सन्देश ज्ञानका सन्देश है। वेदका उपासक ज्ञानका उपासक है। वेदका धर्म ज्ञानका धर्म है। ध्रव मुक्ते समभ आई है कि क्यों आर्यावर्त्तमें, जोकि सहस्रों शताब्दियों तक वैदिक ज्ञानका स्रोत रहा है, मतभेद और धर्मके नामपर अन्य देशोंके समान रुधिर-पात नहीं किया गया। यह मातृभूमि इस पापमयी हत्यासे दृषित नहीं हुई।

महा०—कदाचित तुम्हें पता न हो, हमारे वैदिक ऋषियोंने तर्क अर्थात ज्ञानपूर्वक परीक्तणको साद्मात ऋषि माना है। इसे धर्मके मर्म जाननेके लिये परम सहायक समम्भा है \*। ऋषियोंने बुद्धिकी इस महिमाको वेदहीसे समभा था । सुनो, वेद क्या कहता है।

(२) त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरष्वेभिरागहि। त्वं सूर्यस्य रिक्मिमस्त्वं नो असि यिद्यया ॥१२॥ श्रथर्व०६।१०८।१॥

श्चर्थ—हे (मेधे) वेदादि सत्यविद्याश्चोंको धारण कर सकने वाली बुद्धि देवि (त्वं) त (गोभिः) गौश्चों (श्रश्वेभिः) घोडोंके

सर्वे तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा ।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधमें निविशेत वै ॥ मनु० २ । ८ ॥
न द्वायं चक्षुषा दृश्यो न च सर्वेरपीन्द्रियैः ।
मनसा दीपभूतेन महानात्मा प्रकाशते ॥ महाभारत, श्रान्ति० २४५।३६
स्वेनात्मना चक्षुरिव प्रणेता निशात्यये तमसासंवृतात्मा ।
ज्ञानं तु विज्ञानगुणेन युक्तं कर्माग्रुमं पश्यति वर्जनीयम् ॥
महाभारत, शान्ति० १९९ । १७ ॥

<sup>\* &#</sup>x27;'मनुष्या वा ऋषिषूकामत्सु देवानृष्ठवन् को न ऋषिभविष्यतीति तेम्य एतं तर्कमृषि प्रायच्छन् मन्त्रार्थेचिन्ताम्यूहमम्यूदम् । तस्माचदेव किं चान्चानोऽभ्यूहत्यार्षं तद् भवति ॥ निरुक्त, १३। १२॥

साथ [ थ्रोर] (त्वं) त ( सूर्यस्य) सूर्यकी (रिश्मिभः) किरणों के साथ (प्रथमा) सबसे पहिले तथा प्रकृष्ट रूपसे (नः) हुमें ( थ्रा-गिहे) प्राप्तहो । (त्वं) त (नः) हमारे लिये (यिश्रया) पूजाके योग्य ( श्रीस) है ॥ २ ॥

(३) मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् । प्रपीतांब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥१३॥ ०—२॥

श्रर्थः—में (प्रथमां) प्रकृष्ट (ब्रह्मग्वतीं) ब्रह्मसे युक्त (ब्रह्मज्ञतां) ब्रह्मद्वारा प्रेरित (ऋषि-स्तुतां) ऋषियोंद्वारा स्तुतिकी गयी (ब्रह्मचारिभिः) ब्रह्मचारियोंद्वारा (प्र-पीतां) विशेष करके सेवनकी गयी तथा बढ़ायी गयी (मेधां) मेधाकी (हुवे) श्राराधना करता हूं, [तािक ] (देवानां) देवता (श्रवसे) रज्ञा करें॥३॥

(४) यां मेघां ऋभवो विदुर्यां मेघामसुरा विदुः। ऋषयो मद्रां मेघां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि ॥१४॥ ०-३॥

श्रर्थः—(यां) जिस (मेधां) मेधाको (ऋभवः) कला-कौशलमें प्रवीण विद्वान (विदुः) जानते हैं, (यां) जिस (मेधां) बुद्धिको (श्रसुराः) मेघ श्रादिकी विद्याके श्रानी (विदुः) जानते हैं, (यां) जिस (भद्रां) कल्याणमयी (मेधां) बुद्धिको (ऋषयः) ऋषि (विदुः) जानते हैं (तां) उसे (मियं) श्रपने श्रन्दर (श्रा-वेशयामिस ) स्थापित करते हैं॥ ४॥

(५) यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृषु ॥१५॥ —४॥ ग्रर्थः—(यां) जिस (मेघां) बुद्धिको (भूतरुतः) विविध पदार्थोको बनानेवाले (मेघाविनः) बुद्धिमान (ऋषयः) ऋषि (विदुः) जानते हैं। हे (श्रग्ने) प्रकाश-स्वरूप, भगवन, (तया) उस (मेघया) मेघासे (श्रद्ध) श्रव (मां) मुक्ते (मेघाविनं) बुद्धमान (रुख्ध) कीजिये॥ ४॥

(६) मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिने परि। मेधां सर्यस्य रिवाभिनेचसा वेशयामहे ॥१६॥ ०—४॥

श्रर्थः—(सायं) सांभ (प्रातः) सुवेरे (मध्यन्दिने) दोपहरके समय (सूर्यस्य) सूर्यकी रिप्तयोंके साथ (वचसा) वाणीद्वारा (मेधां) बुद्धिको [हम ] ( श्रा-वेशयामिस ) भ्रारण करते हैं ॥ ६॥

सत्य०—वाणीद्वारा बुद्धि कैसे धारण होती है ? सूर्यकी रशिमयोंके साथ, भगवन, बुद्धिका क्या संबंध है ?

महा०—बेटा, वाणी मनकी इच्छाओं, भावनाओं और वासनाओंका प्रकाशक साधन है। वेद साधकोंको यह उपदेश करता है कि वाणीद्वारा कहो कि हममें बुद्धि ष्रावे। प्रातःसायं, दिन और रात्रि तथा अन्य सब समयोंमें जब अवसर मिले, इस मानसिक धारणाका वाचिक प्रकाश करो। इसका अपने ऊपर निरालाही प्रभाव पड़ता है। सोयी हुई बुद्धि जाग पड़ती है। आलस्य दूर होता है। चेतनता उमड़ पड़ती है। कहनेसे तात्पर्य दूसरेसे कहना नहीं, प्रत्युत एकान्त स्थानमें, अपने आपको सम्बोधन करके या प्रकाशस्वरूप प्रभुके सम्मुख कहनेसे तात्पर्य है। यह भावना और प्रार्थना शक्तिका स्रोत है और, सुर्यंकी किरणोंका विस्तार तो देखो। प्रभातके समय कभी बाहिर, खुले मैदानमें निकल जाओ और उदयहोते हुए सर्य भगवानकी इविको देखो। श्रमी न जाने कहांसे, एक श्रित लाल रंगका गोलासा पृथिवी श्रोर श्राकाशके जोड़से ऊपर उठता है और श्रमी उसकी लाली श्रेत प्रकाशमें बदल जाती है। श्रव उसकी श्रोर देखा नहीं जासकता। उसने श्रपनी किरणोंको चारों श्रोर विस्तृत रूपसे फैला दिया है। कोने २ में उसका प्रकाश पहुंच चुका है। यह है प्यारो, सर्यकी रिमयोंका भाव, और इसीके श्रनुसार दूर २ तक पहुंचनेवाली, विद्या-मन्दिरके प्रत्येक कोनेमें प्रकाश करनेवाली सदमसे सदम पदार्थोंको श्रहण करनेवाली विशाल बुद्धिका धारण करना वेद सिखाता है।

माया०—महाराज, श्रापने श्रभी सुनाया कि बुद्धि ब्रह्मसे युक्त श्रौर ब्रह्मसे प्रेरितहो। इसे तनिक खोलकर कहियेगा।

महा०—प्यारे, ब्रह्म परमेश्वरका नाम है। ब्रह्म वेदको भी कहते हैं। ब्रह्म सहम ज्ञानकाभी नाम है। उसके धारण करने वाले ब्राह्मणकोभी ब्रह्मन शब्दसे संकेतित करते हैं। बुद्धि वहीं अच्छी और उन्नत होगी, जो इन बातोंको समक सके तथा आस्तिक भावसे युक्तहो। प्रभुकी परणासे ही बुद्धिका अत्यन्त विकास होता है। सत्य-ज्ञानका आश्रय लेकर बुद्धि विशाल बनती है। इसीलिये आगे यहां कहा है कि ऋषि लोग जिस बुद्धिकी स्तुति करें, वह बुद्धि हमारे लिये उपादेय है। मिथ्यावाद वितग्रहा, शुक्ततर्क आदि भ्रमोत्पादक और जलमन्थनमात्र हैं। इनमें समय खपाना आयुका नाश करना है। विद्या और विज्ञानकी उन्नतिके लिये आवश्यक है कि सादा तथा सरल जीवन वाले,

तपस्वी, व्रतचारी, शान्तस्वभाव, योग्य लोग सद्म तत्त्वोंकी परीत्ता करते रहें। जहां जनतामें पेसे पुरुषोंकी कमी होजाती है, वहां परस्पर द्वेष, द्रोह, निन्दा, ईर्ष्या ग्रादि पापाचारका खब प्रचार होता है। वं २ ग्रीर में २ का घोर राज्ञस-राज्य विस्तृत होता है। ग्रशान्ति बढ़ती है। शोर ग्राधिक होता है श्रीर कार्य कम होता है। ग्रातः वेदने क्या सुन्दर सन्देश दिया है, कि विश्वान-सहायक बुद्धि ब्रह्मचारी लोगों द्वारा सेवनकी जाकर ग्रच्छी तरह बढ़ती है। वे निलोंभरूपसे प्रजाहितके लिये उत्तम बुद्धिका प्रकाश करते हैं। देहमें रीढ़की हड्डीकी तरह यह धर्मात्मा लोग समाजके जीवनके ग्राधार होते हैं।

वस्तु०—महाराज, यह महाशय तो अपने श्रासनसे हिलतेही नहीं। समाजपर इनका प्रभाव क्या होता होगा ?

महा०—नहीं, भोले, तुम भूल रहे हो। यही तो इनकी उस महती, श्रोजस्विनी बुद्धिका चमत्कार है कि वे अपने श्रासन पर बैठे बिठाये संसारको हिला डालते हैं। साधारण लोग सिणक उबालसे घबरा जाते हैं। पर यह चटानोंकी तरह ज्यारभाटोंमेंभी निश्चल खड़े रहते हैं। वेदभगवानका यह श्राशय है कि पेसे प्रकाश-स्तंमही संकटमें जातियोंकी रत्ना करते श्रौर शान्तिके समयमें श्रपनी ज्योतिसे प्रकाशित करते रहते हैं।

लोक०—महाराज, गौद्यों घ्यौर घोड़ोंके साथ बुद्धिके श्रानेका क्या भाव है ?

महा०—वेटा, गौपं और घोड़े शारीरिक पुष्टिके चिह्न हैं। वेदका यह भाव है कि पुष्ट शरीरका होना अत्यावश्यक है। साधारणतया सांसारिक पेश्वर्य और बल बुद्धिके ऊपर शासन करता है, परन्तु साथही यहभी उपदेश है कि यह समृद्धि बुद्धिका फलरूपभी है। वे बुद्धिमान् निर्वुद्धि हैं, जिनके होते हुए, जाति में न सुख बढ़ता है, न गौंए होती हैं थ्रौर न घोड़े होते हैं। बुद्धिमत्ताका यह परिणाम होना चाहिये कि लोगोंका पेश्वर्य बढे।

श्चन्त०—भगवन्, तो क्या भारतवर्षमें श्राजकल विद्वानोंकी कमी है, जो प्रतिवर्ष श्रकाल पड़े रहते हैं।

महा०—हां, प्यारे, ऐसे विद्वानोंकी कमी है, जो अपनी जातिके सुखके लिये अपना आप निद्धावर करनेवाले हों। और जो कुच्छ थोड़ी बहुत अवस्था सुधरमी रही है, उसकी नींवमें इने गिने पांच दस व्यक्तियोंकाही तो कार्य है। इसलिये इसीमेंही प्रत्येक जातिका कल्याण है कि उसके अन्दर प्राकृतिक तथा मानसिक शानके मगुडाररूप, तत्त्ववेत्ता विद्वान अधिकहों। और सुनिये।

(७) द्यौश्र म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः। अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्र सं ददुः॥१७॥ अथर्व० १२।१।४३

ध्रर्थः—(द्यौः) द्युलोक (च) ध्रौर (पृथिवी) (च) ध्रौर (ध्रन्तरिज्ञ) मध्यवर्त्तीलोकने (मे) मुक्ते (इदं) यह (न्यचः) विस्तार [दिया है]। (ध्रिग्नः) ध्राग (सूर्यः) सूर्य (ध्रापः) जल (च) ध्रौर (विश्व) सारे (देवाः) देवताध्रोंने (मेधां) मेधाको (सं-ददुः) ध्रच्छे प्रकारसे दिया है॥ ७॥

श्रनुभवी विद्वानके सामने विस्तृतभूमि श्रौर श्राकाश विस्तारके श्रादर्श हैं। श्रन्नि श्रादि देवताश्रोंकी संगतिसे उसके अन्दर विचार पेदा होकर, सदम बुद्धिकी आधार-शिला बनती है। इन शक्तियोंका खुला संपक नाना प्रकारके इशारे करता और ज्ञानको जगाता है। वेदका यह आशय है कि खुले, विशाल जीवन तथा बुद्धिकी विशालतामें इदं गिर्दके भौतिक जगतका बड़ा हाथ है। एक २ फूल और पत्ते में, मानो, पुस्तकोंकी पुस्तकें बन्द पड़ी ह। आंखें रखने वाले ध्यानसे देखें। विस्तृत संसारमें रहते हुए विस्तारको धारण करना सीखें।

माया०—धन्यहो, महाराज, आपके एक २ शब्दसे नया उत्साह पैदा होता है।

महा०—श्ररे भाई, मेरे शब्द क्या हैं ? वेद भगवानकीही यह कृपा है। उसके एक २ प्रकरणमें उत्साह ही उत्साह भरा है। एक मन्त्र श्रौर सुनाकर श्राजका खगड समाप्त करूंगा।

(८) इध्मेनाय इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय। यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥१८॥ ऋक०३। १८।३॥

श्रथः—(इध्मेन) ईंधन [श्रोर] (घृतेन) घृतके साथ (इच्छमानः) [उन्नितकी] इच्छा करता हुआ (हव्यं) सामग्रीकी (जुहोमि) श्राहुति देता हूं, [तािक मुक्ते] (तरसे) वेग [श्रौर] (बलाय) बल [प्राप्तहो]। (यावत) जहांतक (ईशे) मुक्तमें सामर्थ्य है, (ब्रह्मणा) स्तोत्रद्वारा (वन्दमानः) भक्ति करता हुआ (शतसेयाय) सेंकड़ों प्रकारकी प्राप्तिकेलिये (इमां) इस [श्राति प्रसिद्ध तथा उपयोगी] (देवीं) प्रकाशमान (धियं) बुद्धिको [उपयुक्त करूंगा]॥ ८॥ सज्जनो, भिक्तका बुद्धिकी उन्नतिके साथ पूर्वभी इशारा किया जाचुका है। यहांभी वेदने यही उपदेश किया है कि बुद्धिमानकी परीचा उसके विनयसे होगी। जो श्रिभमानी होकर प्रभुके श्रागेभी भुक नहीं सकता, उसकी बुद्धिसे क्या जाम? वह तो विद्याकी श्रविद्याम है। पुरुषार्थका क्या श्रव्हा उपदेश है। जबतक प्राणोंमें प्राण है, पूर्ण उद्यम करते रहो। भट घबरा न जाया करो। कोई मनुष्य एकही द्युजांगसे न राजा, न धनाद्य श्रीर न ऋषि बन सकता है। हां, यह विश्वास होना चाहिये कि हमारे श्रन्दर बढ़ने श्रीर बड़ा बननेके बीज मौजूदहैं। बुद्धिका प्रकाश होना चाहिये, तािक हममें उन बीजोंको विस्तार देनेका भाव पैदा हो।

सत्य०—महाराज, वेग श्रौर बलके लिये श्राहुति देनेका क्या भाव है ?

महा०—वेटा, श्रभी देवताश्रोंकी संगतिके लाभोंका संकेत कियागया था। प्रभु प्रकाशस्वरूप तथा महोपकारी है। श्रिष्ठ उसकी दिव्य शिक्तयोंका एक प्रसिद्ध प्रतिनिधि है। ईन्धन श्रौर घृतके साथ श्राहुतिका देना इस बातका संकेत है कि साधक श्रिष्ठकी भान्ति प्रकाशको धारण करता हुआ, त्याग तथा उपकारके भावसे युक्तहो। इस प्रकारके संकेतोंको समभनेसेही देवताश्रोंसे सम्पर्क बढ़ता है। इसे ही देवयन्न कहते हैं।

लोक॰—तो क्या यह होम केवल विश्वासके श्राधारपर कियामात्र नहीं है ?

महा०—होम किया है परन्तु देवयश केवल किया नहीं। यशका वास्तविक तार्ल्य श्रात्मिक संस्कारकी शुद्धि है श्रौर वह विज्ञान श्रौर विचारके पीछे श्राचरण्यर निर्भर है। इसके विना किया २ रह जाती है। वह धर्म नहीं बनता। धर्मका भाव धारण् करनेवाला बल श्रौर सामर्थ्य है। उसका बुद्धिके विकासके साथ घना संबंध है। श्रातः यह वेद भगवानकी महिमा समको कि ज्ञान श्रौर कर्मको मिलाकर, बुद्धिको बढ़ाते हुए सत्यधर्मके पालनका उपदेश करता है\*।

माया०—भगवन, श्राजकल दिन श्रति छोटे होगये हैं। श्रापकोभी देर होजाती है। यदि श्राज्ञाहो, तो कुच्छ पहिले श्राजाया करें।

महा०—हां, ठीक है। पांच बजेके लगभग त्राजाया करें। श्रच्छा, तो श्रव ध्रौर देर न करें।

## द्वितीय खएड ज्ञानकी महिमा।

-55th-2-

महा०—सत्यकाम, देखोतो सही, च्राज क्या बात है ? श्रभीतक कोई श्राया नहीं।

सत्य०---महाराज, श्रमी श्राजाते हैं। (खिड़कीसे बाहिरकी श्रोर मुख करके) वह कई श्रा रहे हैं।

माया०-भगवन्, नमस्ते । कहीं बहुत चिर तो नहीं हो गया । हम प्रायः मार्गमेंही सब मिलते गयेथे । वस्तुस्यरूपजीके

<sup>\*</sup> इस विषयके विस्तारके लिये देखों, देवयज्ञप्रदीपिका, पृष्ठ २८-८८के अन्तर्गत प्रकरण ।

मकानके घ्रागे कुच्छ समय ठहरना पड़ा । उनके एक संबंधी घ्राये हुए थे।(उसकी घ्रोर देखकर)महाराज, इन्हें साथ लाये हैं।

महा०—श्रच्छा किया । जितने श्रधिक कानोंमें वेदकी पवित्र वाणी पड़ सके, उतनाही श्रच्छा है । वस्तुस्वरूप, यह श्रापके संबंधी कहांसे श्राये हुए हैं ?

वस्तु०—गुरुजी, श्रापका नाम महाशय देविमत्र है। श्राप मथुराके रहनेवाले, श्रच्छे सुपठित श्रौर देशभक्त हैं। श्रापको विद्वानोंके सत्संगमें बड़ी रुचि है।

सत्य०-तो, श्रवश्य शताब्दी-महोत्सवमें पधारे होंगे ?

देव०—(मुस्कराकर और सिर क्किकाकर, महात्माजीके चरणोंमें कुच्छ फल रखकर) महाराज, मैंने श्रापके दर्शन वहां पर किये थे। श्रापका उपदेशभी सुना था। श्राज फिर यह श्रवसर पाकर कृतार्थ हुआ हूं।

महा०—महाशय जी, धर्म-चर्चा श्रौर विद्या-विनोदके लिये परस्पर संवाद करना श्रौर मिलकर बैठना बड़ा लाभदायक है। कल मैंने बुद्धिकी प्रेरणांके विषयमें कुच्छ मंत्र सुनाये थे। श्राज उससे श्रागे चलता हूं। सुनिये, सरस्वती श्रर्थात विद्याके गौरवको वेद भगवान कैसे वर्णन करता है।

(१) पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥१९॥ यज्ञ०२०। ८४।

श्चर्थः—हे भगवन् (पावका) पवित्र करनेवाली (वाजेभिः) [नानाप्रकारके] बलोंसे (वाजिनीवती) बलयुक्त हुई २ (घियावसुः) बुद्धिद्वारा धन, पेश्वर्यको प्राप्त करानेवाली (सरस्वती) विद्या (नः) हमारे (यज्ञं) [जीवनरूपी] यज्ञको (वष्टु) पसन्द करे ॥१॥

कौनसा मल है, जो ज्ञान दूर नहीं कर देता ? कौनसा बल है, जो विद्याद्वारा प्राप्त नहीं होसकता ? बुद्धि विद्या-प्राप्तिका साधन है श्रौर बुद्धिकी विशालता विद्याका परिणाम है। धन और ऐश्वर्य उस उन्नत बुद्धिका निश्चित फल होता है, परन्तु यह सुख-सम्पत्ति स्थिर तब होगी, जब हमारा जीवन यञ्चरूप होगा। श्रर्थात, विद्वानोंकी पूजा, मिलकर रहना श्रौर दानशीलता जिस समाजमें पाये जावंगे, वहीं विज्ञानका श्रिधक विस्तार श्रौर फल होगा।

सत्य०-महाराज, यह बातें तो ज्ञानके पीछेही आती हैं।

महा०—हां, परन्तु कई वार इससे उलटे गुण रखनेवालों के पासभी विद्या चली जाती है। वह उनके पूर्व कर्मीका फल समभो। उससे समाजको विशेष लाभ नहीं होता। इसलिये वेदका भाव हमारे सामने विद्याके उच्च ब्रादर्शको रखनेका है। सुनो,

श्रर्थः—(सृनुतानां) प्रेमभरे, सत्य व्यवहारोंकी (चोद-यित्री) प्रेरणा करनेवाजी (सुमतीनां) श्रच्छे विचारोंको (चेतन्ती) सिखानेवाजी (सरस्वती) विद्या (यज्ञ) यज्ञमय [जीवन]को (द्धे)पुष्ट करती है॥२॥

वस्तु०—पाठशालाश्रों श्रौर विद्यालयोंमें दीवारोंपर लटकाने योग्य क्या सुन्दर उपदेश हैं! सत्य०—श्रजी, दीवारोंपर क्या, प्रत्येक पढ़ने पढ़ाने वालेको श्रपने हृदयपर लिखकर, ऐसा बनना चाहिये। महा०—श्रौर, सुनिये।

(३) महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ॥२१॥ ०—८६॥

धर्थः—(सरस्वती)(केतुना) ज्ञानद्वारा (महः) श्रति विस्तृत (धर्णः) [मानसिकवेगके] प्रवाहको (प्रचेतयित) [चला देती है, मानो] जगादेती है। (विश्वा) सर्व प्रकारकी (धियः) ध्यान-शक्तियोंको (विराजित) चमका देती है॥३॥

प्यारो, हृदय-मिन्दरमें सरस्वतीदेवीको स्थापित करो।
मनको जगाश्रो श्रौर विचार-शक्तिकी नदीसी बहादो । श्रपने
श्रापको नित्य इस निर्मल स्रोतमें स्नान कराश्रो। बाहिरका जल
श्रात्मा तक नहीं पहुंच सकता । जो इस तीर्थमें स्नान कर चुकते
हैं, उनके विषयमें देखो, वेद क्या महत्त्वपूर्ण सन्देश दे रहा है।

(४) सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमकत । अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां छक्ष्मी- निहिताधि वाचि ॥२२॥ ऋक्०१०। ७१।२॥

भ्रर्थः—(यत्र) जिस [समाज] में (धीराः) बुद्धिमान् जन (तितुउना) चालनीद्वारा (सक्तुम्-इव) सत्तुकी तरह (मनसा) मनद्वारा (वाचं) वाणीको (पुनन्तः) शुद्ध करके

<sup>\*</sup> अद्भिगात्राणि ग्रुध्यन्ति मनः सत्येन ग्रुष्यति । विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिज्ञानेन ग्रुध्यति ॥ मनु० ५ । १०९ ॥

( श्रकत ) प्रयोगमें लाते हैं। ( श्रत्र ) यहां [परही] (सखायः ) मित्र ( सख्यानि ) मित्रता [करना] ( जानते ) जानते हैं। ( पषां ) इन (विद्वानों ) की ( श्रिध-वाचि ) वाणीपर ( भद्रा ) कल्याण करनेवाली ( जन्मीः ) जन्मी (निहिता ) निवास करती है ॥ ॥

वाणी मानसिक भावोंकाही प्रकाश करती है। बुद्धिमानोंको उचित है कि ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर श्रादि विकारोंसे पृथक् करके, श्रुद्ध, प्रेममयी वाणीका विस्तार करें। जो उनके समीप श्रावे, उनके प्रेम भरे व्यवहारसे मोहित हो जावे। परमात्माने मुखमें वज्र नहीं रखा। यह जिह्वा हृदयके प्रेमको प्रकाशित करनेके लिये है।

देव०---महाराज, जब श्रन्द्रही प्रेम न हो, तो वाणी क्या प्रकट करेगी ?

महा०—प्यारे, इसीिलये तो वेद स्पष्ट कह रहा है कि विद्वानोंको प्रथम श्रपने हृद्यकी श्रुद्धि करनी चाहिये। फिर मनको चालनी बनाकर, प्रत्येक बात सोच समस्कर निकालनी चाहिये। इसका परिणाम यह होगा कि समाजमें शान्तिका विस्तार होगा श्रौर सबका कल्याण होगा। यही मित्रताका वास्तविक श्राधार है। वाग्-वज्रके सामने मित्रता कहां ठहर सकती है। इसिलिये वेद संसारमें सौम्य, शान्त, सात्त्विक स्वभाववाले, स्निग्ध विद्वानोंकी श्रावश्यकताको बताता है।

(५) यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् । तामाभृत्य व्यद्धुः पुरुत्रा तां सप्तरेभा अभि सं नवन्ते ॥२३॥ ०—३॥

श्रर्थः—[ उन्होंने ] (यक्षेन) यक्षद्वारा (वाचः) वाणीकी (पद्वीयं) गतिको (श्रायन्) प्राप्त किया। (तां) उस (ऋषिषु) ऋषियों में (प्रविष्टां) प्रविष्ट हुई २ को (श्रनु-श्रविन्दन्) [ यत्न करके उन्होंने ] पा लिया। (तां) उसे (श्राभृत्य) श्रच्की तरह धारण करके [उन्होंने] (पुरुत्रा) सर्वत्र (वि-श्रद्धुः) विस्तार कर दिया। (तां) उसीको (सप्त) सात (रेभाः) स्वर (श्रिभ-सं-नवन्ते) पूर्णतया गाते हैं ॥ ४॥

यक्षका वाणिके साथ संबंध इससे पूर्वभी दर्शाया जा चुका है। वैदिक जीवनका यक्ष मुख्य केन्द्र है। ऋषियों में विद्यामयी वाणी कहां से आकर प्रवेश करती है। समस्त अनुभवी जोगोंका यह सिद्धान्त है कि प्रभुही अपने भक्तोंको निहाल करता है। उसीकी प्रेरणासे अतीन्द्रिय बातें सूफ पड़ती हैं। जिन्हें यह प्रकाश होता है, उन आदि ऋषियों से सत्संग करके दूसरे जोग प्रकाश जाभ करते हैं। फिर वे आगे विस्तार करते हैं। इस प्रकारसे सत्य विद्या संसारमें फेलती है। किसीका इसमें अनिधकार नहीं। जो समफ सकता है, पुरुषार्थ करनेको तथ्यार है, अद्धालु है, वह अवश्य पालेगा। सप्त स्वरों में ही सारा संगीत बन्द है। पूर्णताको प्राप्त होकर, सच्चे हृदयों से निकलती हुई वाणी गीतमयी बन जाती है। सकल साहित्य और संगीत विक्षानसे पूर्ण वाणीपर निर्भर है। इसिलये सब प्रकारसे इसकी प्राप्तिके लिये पुरुषार्थ करो।

माया०—महाराज,क्या श्रद्भोंकोभी विद्या पढ़ानी चाहिये। महा०—क्यों नहीं ? उन्होंने क्या पाप किया है । वेद भगवान सबका मार्ग विशाल करना चाहता है। द्या०-पर, यहांतो वेदके नाम परही शृद्रोंको पढ़नेसे रोका जाता रहा है।

सत्य०—ग्रौर, इसका फल क्या हुग्रा है। विद्याका नाश, राज्यका नाश, ऐर्श्वयंका नाश, श्रात्मविश्वासका नाश, परस्पर प्रेमका नाश ग्रौर समाजका नाश।

महा०--बिल्कुल ठीक। वेदके धर्मके विरुद्ध कियाजाता रहा है। यह पाप श्रोर श्रत्याचार था। इसीका यह सारा कड़वा फल है, जो हम श्रव भोग रहे हैं।

(६) उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचग्रुत त्वः शृण्वन्न शृणो-त्येनाम् । उतो त्वस्मै तन्वं विसस्ने जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥२४॥ ०—४०॥

श्रथः—(उत) एक श्रोर (त्वः) एक [वह है, जो] (पश्यन्) देखता हुश्रा (वाचं) वाणीको (न) नहीं (द्दर्श) देखता । (उत) एक श्रोर (त्वः) एक [है, जो] (श्र्यवन्) सुनता हुश्रा (एनां) इसे (न) नहीं (श्र्णोति) सुनता। (उ) श्रोर (उत) दूसरी श्रोर (त्वस्मै) एक [वह है, जिसके] प्रति [वाणी) (तन्वं) श्रपने श्रापको (वि-सस्रे) पूर्णत्या प्रकट कर देती है, (इव) जैसे (उश्रती) कामना करती हुई (सु-वासाः) सुन्दर वस्त्रोंवाली (जाया) स्त्री [श्रपने] (पत्ये) पतिके प्रति [श्रपने श्रापको समर्पित कर देती है] ॥ ६॥

श्चानकी महिमा कितनी ही हो, सारे जोगोंने एक जैसा तो इसे नहीं श्रपनाना। श्रपनी २ योग्यता श्रौर श्रपनी २ रुचिका प्रश्न है। वेद कितने बजसे मनुष्योंके परस्पर भेदको प्रकट करताहै। एक वह मनुष्यहै, जिसके आगे संसारकी पुस्तक खुली पड़ीहै, उसके कानोंमें अच्छेसे अच्छे शब्द पड़तेहैं, परन्तु उसका मन जागनेमें नहीं आता। दूसरी ओर मनुष्योंका वह विभागभी है, जिसके सामने विद्या दासीके समान खड़ी रहती है। वेदकी उपमा इससेभी बढ़कर है। दासीका संबंध दबावका संबंध है। पत्नी तो प्रेमकी मूर्ति है। विद्या मानो, उसकी अर्थाङ्गिनी बनकर जीवन-यक्को पूर्ण करनेमें पूरी सहायता करती है।

(७) उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यिप वाजि-नेषु । अधेन्वा चरित माययेष वाचं ग्रुश्रुवां अफलामपुष्पाम् ॥ २५॥ ०—४॥

प्रश्री:—(उत) थ्रौर (त्वं) एकको [तो लोग] (सख्ये)

मित्रतामें (स्थिरपीतं) पका पिया हुश्रा (श्राहुः) वर्णन करते हैं,
(श्रिप) थ्रौर (वाजिनेषु) विद्याकी चर्चाथ्रों थ्रौर सम्वादों में
(पतं) इसकी [पहुंचको कोई] (न) नहीं (हिन्वन्ति) पहुंच
सकते। [दूसरी थ्रोर] (एषः) यह [इस प्रकारकाभी मनुष्य है,
जो] (श्रधेन्वा) तृप्त न कर सकनेवाली (मायया) मायासे [युक्त
होकर] (चरति) जीवन व्यतीत करता है, [उसने] (वार्च)
वाणीको (श्रुश्रुवान्) सुना [तो] है, [परन्तु वह] (श्रफलां) फलों
[तथा] (श्रपुष्पां) पुष्पोंसे श्रन्य [थी]॥ ७॥

पूर्व कह आये हैं कि मित्रताका आधार सच्चे विद्वानोंका प्रेम-भरा जीवन होता है। यहां इस बातकी ओर फिर इशारा करके कहा है कि विद्याके सागरमें अच्छी प्रकार स्नान कियेंडुए, अनुभवी सज्जनोंकी मित्रता ही पक्की मित्रता होती है। शरीर, ક્રેષ્ટ

धन, वस्त्र, मकान आदिका आकर्षण संसारमें मित्रताका मृल बनता है। परन्तु, प्यारो, यह मित्रता कितने बखेड़ेके साथ समाप्त होती है। कितनी लड़ाई, कितना भगड़ा और कितना दु:ख इसमें मिला रहता है।

वस्तु०—महाराज, बड़े २ कवियोंने इसी मित्रताके वर्णनमें श्रपनी लेखनीको चलाया है।

महा०—यह ठीक है। सांसारिक जनोंको अपने जैसोंके चित्र देखकर ही सन्तोष प्राप्त होता है। परन्तु यह मित्रता ज्ञानकी आत्मिक मित्रताके सामने फीकी दिखाई देती है। दूसरे चित्रपर भी विचार करो। मूर्ख समस्तता होगा कि मेरे समान यहां कौन चालाक है। यही तो मनुष्यकी मूर्खताका सबसे बड़ा चिह्न है। यह उसका माया-भ्रम है। यह दूध न देनेवाली गौ समस्तो। उसने दो चार शब्द पढ़े होंगे। परन्तु वह विद्याकी लता हरी-भरी नहीं। उसपर न पुष्प है, न फल है। उसके ऊपर न पित्तयोंको विश्राम मिलता है और न उसकी छायाम मनुष्यों और पशुश्रोंको आराम मिलता है। वेदका यह भाव है कि इस प्रकारके मृद्ध-मित विद्वान मत बनो। संसारके साथ पूरी सहानुभृति रखनेवाले, विनय आदि गुणोंसे सुभृषित विद्वान बनना ही अपना लच्य बनाओ।

(८) यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यिप भागो अस्ति । यदीं शृणोत्यलकं शृणोति न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥२६॥

श्रर्थः—(यः) जो [ ज्ञानरूपी ] (सचिविदं ) साथ देने

वाले (सखायं) मित्रको (तित्याज) त्याग देता है (तस्य) उसके लिये (वाचि) वाणीमें (श्रिप) भी (भागः) [ सेवन करने योग्य] भाग (न नहीं (श्रिक्ति) है। (यत्) जो (ई) कुच्छ (श्र्यणीति) सुनता है, (श्रजकं) मिथ्या (श्र्यणीति) सुनता है, (ह) क्योंकि (सुकृतस्य) कल्याणके (पन्थां) मार्गको (न) नहीं (प्र-वेद) पाता॥ ॥॥

पेसा मनुष्य जो कुच्छभी सुने या पढ़े, वह तत्त्व-झानसे श्रुन्य होनेके कारण पूरा सहायक नहीं होता। वाणीका सेवनीय भाग क्या है ? सुविचारोंका प्रकाश, जिसे लोग श्रुपना सकें। जब श्रुन्दर ज्ञानहीं नहीं, तो वाणी केवल हिलती है श्रौर शब्द उत्पन्न होता है। पर उसमें कोई सार नहीं होता। श्रुतः शुष्कवाद तथा जलमन्थनमें न पड़ कर, तत्त्वज्ञानको ही विद्याका लच्च्य समस्तना चाहिये।

(९) अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः । आद्ञास उपकक्षास उ त्वे इदा इव स्नात्वा उ त्वे दद्दश्चे ॥२७॥ ०—७॥

श्रर्थः—(श्रवसवन्तः) श्रांखें रखनेवाले (कर्णवन्तः) कान रखनेवाले (सखायः) [ समान स्वरूपवाले ] साथी (मनोजवेषु) मनकी दौड़ोंमें (श्रसमाः) श्रतुल्य (बभुवुः) होते हैं।(त्वे) कुच्छ (उ) तो (श्राद्मासः) मुख पर्यन्त [श्रथवा] (उपकत्तासः) बग़लों तक [श्राने वाले जलके] (हदाः इव) तालाबोंकी तरह (उ) श्रीर (त्वे) कुच्छ

(स्नात्वाः)[खुला] स्नान करने योग्य [तालाबोंकी [तरह] (ददश्रे) दिखाई देते हैं ॥ ६॥

वही आंखें हैं, वही कान हैं। वही हाथ हैं, वही पग हैं, परन्तु एक वह है, जो मानो, हिमालयकी हिमाच्छादित चोटीपर खड़ा है। और, एक वह है, जो सागरके किसी गहरे गढ़ेमें छिपा पड़ा है। एक वह है, जो नेता बनकर अंगुलीके इशारेसे सहस्रों अपने जैसे मनुष्य देहधारियोंको पीछे चलाता है। एक वह है, जिसे मेड़ बकरीकी मान्ति जहां चाहो, हांक लो। मनुष्य २ के मध्यमें यह अन्तर इस मानसिक गतिके कम या अधिक होनेके कारणसे ही है। अन्तरानन्दजी, आपभी कविता किया करते हैं। वेदके काव्यका भी नमुना देखा?

श्चन्त०-भगवन, क्या भाषा श्चौर वया भाव, वर्णनकी क्या सरजता श्चौर क्या सुन्दरता, जिस बातमें देखता हूं, चिकत हो रहा हूं।

वस्तु०—महाराज, ठीक है। इन्ही श्रजुपम गुणोंके कारणही तो श्रर्यजाति न जाने कितने कालसे, वेदकी शरणमें समर्पित होचुकी है।

महा०-देखो, इस मन्त्रमें सर्वप्रिय विद्वान्का स्वरूप कैंसी भ्रच्छी तरहसे बतायागया है।

(१०) सर्वे नन्दिन्त यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः । किल्विषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजि-नाय ॥२८॥ ०—१०॥ श्रर्थः—(सर्वे)सारे(सखायः)साथी [श्रपने] (सख्या)

मित्रके साथ [जोकि] (यशसा) यशसे [युक्त होकर]
(श्रागतेन) श्राया हो [तथा] (सभासाहेन) सभाको सह
सकता हो [श्रर्थात बड़े २ दिग्गज पिग्डतोंकी सभामें प्रतिष्ठित
हुश्रा हो] (नन्दन्ति) श्रानन्दको प्राप्त होते हैं, (हि) क्योंकि
(सः) वह (एषां) इन [श्रपने साथियोंका] (किल्विषस्पृत्)
पाप-हरण करनेवाला (पितु-सनिः) श्रन्न लानेवाला [तथा]
(वाजिनाय) बल श्रौर वीर्यके [सम्पादनके] लिये (श्ररं)
बहुत (हितः) हितकारी (भवति) होता है॥१०॥

जब समाजमें ऐसे विद्वान प्रकट हों, जो पापाचरण, रोगकारी, मैले व्यवहारोंको नष्ट करें, निर्धनता और दरिद्रताको दूरकर ऐसे उपाय करें, जिनसे सम्पत्ति बढ़े और निर्वजताके स्थानपर बज और पराक्रमसे पूर्ण उत्साहका विस्तार करें, तो फिर क्यों उन्नति न हो! सामाजिक धर्म भी क्या अच्छा बताया है। जोगोंको चाहिये कि ऐसे सदमदर्शी, तत्त्ववेताओं, तपस्वी ब्राह्मणोंकी पूजा करें। विद्वानोंको भी वेद उपदेश करता है कि अपने साथियोंकी प्रतिष्ठाको देखकर प्रसन्न हुआ करें।

देव०—यह तो बड़ी कठिन बात है। साधारण लोग तो फिरभी मिलकर रह लेंगे, पर विद्वानोंसे तो यह नहीं हो सकता। एक दूसरेको देखकर जलतेही रहते हैं।

सत्य०—भाई साहिब, सभी ऐसे थोड़े हैं ? चस्तु०—यह ठीक है, बीज नाश नहीं हुआ। पर साधारण श्रमुभव तो ऐसाही है। लोक०—एक नगरमें दो राजा नहीं रह सकते । एक मियानमें दो तजवारें नहीं समा सकतीं। ऐसेही दो पगिडत भी मिजकर काम करते हुए शायद ही कहीं पाये जाते हों!

महा०--मैं प्रापका भाव समभ रहा हुं । इस समयकी हमारी अवस्था कुच्छ पेसीही वन रही है। इसका मृल आर्य-साम्राज्यका नाश होजाना है । पुराने भ्रादर्शके श्रनुसार ब्राह्मग्रका धन उसकी तपस्या होती थी। उस धनका धनी बड़े २ नरपितयोंके श्रिमान-मदका मर्दन कर देता था। परन्तु इस समय प्रत्येकको श्रपनी रोटीकी पड़ी है।जब एक टुकड़ा दूसरेको जाता दिखाई दे, तो यही प्रतीत होता है कि हो न हो, यह मेरी रोटीमेंसे ही कट कर जा रहा है। इसका परिणाम यह है कि सारे समाजका ही लच्य तुच्छ तृप्ति बन गया है। वेद सोये हुए लोगोंको फिर जगाता है। वेद ऐसे विद्वान चाहता है, जो एक दूसरेकी कीर्ति-पताकाका विस्तार करनेवाले हों। उनका श्रादर्श लोक-सेवा हो, न कि स्वार्थ-पूर्त्ति । स्वार्थ प्रशान्ति बढ़ाता है, सेवाका भाव इसे कम करता है। सज्जनो, यह निश्चय जानो कि सामाजिक विकास तभी ठीक २ होगा, जब जनता फिर वेद भगवान्के इस पवित्र उपदेशपर श्राचरण करेगी । सत्यकाम, श्रासन श्रादि तय्यार करो। सन्ध्याका समय होगया है। देवमित्र जी, आप श्रभी कुच्छ दिन यहीं रहेंगे ?

देव०—नहीं, महाराज, जी तो यही चाहता है कि भ्रापका उपदेश सुनता रहूं। पर पीछे एक भ्रावश्यक कार्य है। मुक्ते कलही जाना पड़ेगा। महा०—श्रच्छा, प्रसन्न रहो । इन बातोंका विचार करते रहना ।

यह कहकर महात्माजी उठ पड़े। सबने श्रद्धासे नमस्तेकी श्रौर श्रपने घरोंकी श्रोर चल पड़े।

## तृतीय खएड वाग्देवीका आत्म-दर्शन।

-3**&**G

महा०—वस्तुस्वरूप जी, श्रापके मित्र चले गये ? वस्तु०—जी हां, स्टेशनसेही श्रा रहा हूं। माया०—भगवन, श्राज किस विषयको लेंगे ? कौनसे रसका श्राज श्रास्वादन होगा ?

महा० - प्यारो, कल और परसों दो दिन भ्रापने वेद भगवानके शब्दोंमें बुद्धि तथा ज्ञानकी महिमा सुनी । श्राज जो सक्त श्रापको सुनाऊंगा, उसमें स्वयं वाग्देवी श्रपना स्वरूप वर्णन करती है। एक २ मंत्र काव्य-रत्न है।

सत्य०—श्रन्य धर्मोंके प्रन्थोंमें तो विश्वान-वृत्तके फर्लोका श्रास्वादन श्रच्छा नहीं समभा गया।

महा०—यही तो वेदका महत्त्व है। सबसे पुराना धर्म-ग्रन्थहो श्रौर इतना बुद्धि, मेधा, विद्या श्रौर विश्वानका पोषक हो। सच है, सामाजिक विकासके माननेवालोंने श्रपने सिद्धान्त, वैदिक साहित्यपर दृष्टिपात किये विनाही स्थिर करिलये हैं। यदि वे वेदादि सच्छास्त्रोंके उज्ज्वल तथा सूच्म भावोंपर विचार करें, तो अपनी सम्मतिको बदले विना न रह सकेंगे । सुनो, वाणी भगवती क्या कहती है !

(१) अहं रुद्रेभिवसुभिश्रराम्यहमादित्यैरुतविश्वदेवैः । अहं मित्रावरुणोभाविभर्म्यहिमन्द्राग्री अहमिश्वनोभा ॥२९॥ ऋकु०१०॥१२४॥१॥

श्रर्थः—(श्रहं) में (रुद्रेभिः) रुद्रों (वसुभिः) वसुओं (श्रादित्येः) श्रादित्यों (उत) श्रौर (विश्वदेवैः) [ श्रलित्तत, श्रसंख्य] सकलदेवताओं के साथ (चरामि) विचरती हूं। (श्रहं) में (मित्रावरुणा) मित्र श्रौर वरुण (इन्द्राझी) इन्द्र श्रौर श्रिष्ठिमा) दोनों (श्रिश्वना) श्रश्वियोंको (विभर्मि) धारण श्रौर पुष्ट करती हूं॥ १॥

परमात्मा सर्वत्र व्यापक होता हुन्ना भी स्थूल नेत्रोंद्वारा दिखाई नहीं देता। परन्तु जहां देखो, उसके चमत्कार दिखाई देते हैं, भौतिक जगतमें सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत, मेघ, वायु, पृथिवी, श्राग्न श्रौर जल उसकी महिमाके विस्तार हैं। देहमें इन्द्रियां, मन, बुद्धि श्रादिकी सद्दम रचना उसीका परिचय देती है। समाजमें विद्वान, त्यागके श्रादर्श, महापुरुष उसकाही यश गाते हैं। वे समाजके प्राग्यूलप हैं। इन चमत्कारोंको वैदिक परिभाषामें देवता कहते हैं।

रुद्र, वसु, भ्रादित्य, मित्र, वस्ण, इन्द्र, भ्राप्ति भ्रौर अश्वी इन्हीं देवताभ्रोंमेंसे हैं।भौतिक जगतमें यह मेघ, पृथिव्यादि निवासस्थान, मास, संवत्सर भ्रादि नियत व्रतचारी, सूर्य, सर्वव्यापक जल, विद्युत, भ्राग, दिन भ्रौर रात्रि भ्रादिके संकेत हैं। शरीरमें प्राण, इन्द्रियादिके वाचक हैं। समाजमें विद्वानों, ब्रह्मचारियों, सन्यासियों, उपदेशकादिकोंसे तात्पर्य है। सज्जनों, वाग्देवी इन सबके साथ विचरती है। इनको धारण करती भ्रौर पुष्ट बनाती है। परमाणु २ में परमेश्वरका श्रखणड, भ्रनन्त भ्रान काम कर रहा है। विना उसकी भ्राञ्चाके एक पत्ताभी नहीं हिल सकता। सामाजिक देवता कायिक देवताश्रोंकी सहायतासे भौतिक देवताश्रोंका भ्रान प्राप्त कर, लोकमें उसका विस्तार करते हैं।

(२) अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूर्णं भगम् । अहं दघामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ ३०॥

ग्रर्थः—(ग्रहं) मैं (ग्रा-हनसं) पाप-नाशक (सोमं) सोम (त्वष्टारं) [सब जगत्का विधान करनेवाले ] त्वष्टा (उत) श्रोर (पूषणं) [सबको पुष करनेवाले ] पूषा (भगं) [सबको पेश्वर्य देनेवाले ] भगको (बिभिमे ) धारण करती हूं। (श्रहं) मैं (हविष्मते) होम करनेवाले (सुपाव्ये) श्रव्हे प्रकार रज्ञादि द्वारा पालन करनेवाले (सुन्वते) सोमयक्षादि करते हुए (यजमानाय) परोपकार करनेवाले [मनुष्यके लिये](द्रविणं) धनको (द्धामि) धारण करती हूं॥ २॥

सोमादि विभृतियां वास्तव उपकारक तब होती हैं, जब मनुष्य इनसे पूरा २ लाभ प्राप्त करे। इसके लिये यह श्रावश्यक है कि वह विचारशील और सदमदर्शी बने। ऐसा होनेपर तो मेघ क्या और विजली क्या, सर्य क्या और चन्द्र क्या, जल क्या और वायु क्या, पृथिवी क्या और अग्नि क्या, सभी भौतिक आध्यात्मिक और सामाजिक देवता उसके लिये ज्ञानका कोष खोले खड़े हैं। सुननेवाला चाहिये। शब्द हारहा है, महान शब्द होरहा है। वाग्देवी इस सर्वव्यापी, किये हुए शब्द-भगड़ार और सदमज्ञानकी ओर हमें पेरित करती है।

दूसरी बात कर्मकागड़ के साथ संबंध रखती है। यजमानको विश्वास होना चाहिये कि मेरा किया हुआ कर्म मेरेलिये मनोवाञ्चित आनन्दका लानेवाला होगा। यज्ञका एक २ अंग संकेतोंसे पूर्ण है। उसे समक्षनेवाला चाहिये। वाग्देवी वहां भी विद्यमान है। जो इस तत्त्वको समक्षकर ठीक रीतिसे कर्म करने लगजाता है, उसे यह देवी निहाल कर देती है।

(३) अहं राष्ट्री संगमनी वस्नां चिकितुषी प्रथमा यिज्ञयानाम् । तां मा देवा व्यद्धुः पुरुत्रा भृरिस्थात्रां भूर्या-वेशयन्तीम् ॥ ३१ ॥ ०—३॥

श्रर्थः—(श्रहं) मैं (राष्ट्री) [सब जगतपर] राज्य करनेवाली (वस्तनां) [विविध प्रकारके] धनोंको (संगमनी) प्राप्त करानेवाली (चिकितुषी) [सकल] ज्ञानके धारण करने कराने वाली (यज्ञियानां) पूज्योंमें (प्रथमा) मुख्य हूं। (तं) उस (भूरिस्थात्रां) नाना रूपोंमें ठहरी हुई (भूरि आवेशयन्तीं) नाना भावोंमें परिपूर्ण होकर समायी हुई (मा) मुक्को (देवाः) देवताओंने (पुरुषा) सर्वत्र (वि-श्रद्धुः) फैला दिया है॥३॥ यह विद्यामयीवाणीही है, जो जगतकी महारानी है। बहे २
राजा और महाराजा इसके आगे मस्तक क्षकाये रहते हैं। वह
कौनसा धन है, जिसे यह अपने भक्तको न लाकर देतीहो। सारे
साम्राज्य और सारे कोष इसीके चरणोंमें केन्द्रित हैं। यह पुज्यों
की पुज्य है। वास्तवमें यही तो सबसे पहिले इस बातको
सिखाती है कि इस प्रकारके लोगोंकी पुजा करनी चाहिये।
उन स्थानोंका और उन रूपोंका कोई अन्त नहीं, जिनमें यह
विज्ञानात्मक वाणी भगवती पायी जाती है। सचमुच आयु
बहुत थोड़ी है और प्यारो, सीखनेवाली बार्ते अनन्त हैं। वेद
उन विद्वानोंको अच्छा समकता और देवता पदसे प्रतिष्ठित
करता है, जो इस देवीके सन्देशको देश देशान्तर और द्वीप,
द्वीपान्तरमें लेजाते हैं। वेद नहीं चाहता कि संसारमें कोई मुखे
रहे।

लोक०—भगवन, बड़े आश्चर्यकी बातें श्राप सुनाते हैं। क्या यह सच नहीं है कि सभ्य संसारमें भारतवासीही सबसे श्रिधिक प्रतिशतक निरत्तर हैं? श्रीर, यह वेदके माननेवालोंका देश है।

महा०—बेटा, तुम जो कुच्छ कहते हो, ठीक है और बड़ा दुःखदायक है। पर यह भी तुम्हें पता होना चाहिये, कि अब वेदको माननेवाले यहां नहीं रहते। मानना इसका तमी असली था, जब लोग इसकी आज्ञाओं को मानते थे। और उस समयके इतिहासके आधारपर ही तो अब भी हम दूसरे लोगों के साथ आंखें मिला सकते हैं। भारतके वैदिककालमें अविद्या पापरूप समसी जाती थी। राजा बड़े अभिमानसे

## कह सकते थे कि हमारे राज्योंमें कोई श्रविद्वान नहीं है \*।

\* "स ह प्रातः संजिहान उवाच,
 न मे स्तेनो जनपदे न कदयों न मद्यपः ।
 नानाहिताग्निनीविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः" ॥

छान्दोग्य० ५। ११।५॥

आज किस देशका राजा इतना गौरवयुक्त वचन कह सकता है ? महाराज दशरथके समयकी अयोध्याका वर्णन सुनो,

"कामी वा न कदयों वा नृशंसः पुरुषः क्रचित् । द्रष्टं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः" ॥

वाल्मीकरामायण १।६।८॥

नारियां भी वेद तक पढ़ती और यज्ञ करती थीं । सुनो, कौशस्या महाराणीका वृत्तान्त,

> "सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा । अप्नि जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमंगला' ॥

वाल्मीक०२।२०।१५॥

सुग्रीव, हनुमान् आदि जंगली देशके रहनेवाले थे। परन्तु विद्याका प्रचार वहां भी भली-भान्ति होचुका था। सुनो, महाराज रामचन्द्र हनुमान्के मधुर-वचनोंको सुनकर कैसे उसकी विद्याकी प्रशंसा करते हैं।

> "नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः । नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥ नृनं च्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् । बहुच्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्"॥

वाल्मीक० ४।३।२८,२९॥

कहां यह ब्रह्मियों और राजिषयोंका आर्यावर्त्त देश और कहां आज कल्लके दृब्बू हिन्दुओंका हिन्दोस्तान! मातृभूमिकी इस समय यदि सबसे कोई बड़ी सेवा है, तो वह घर-घरमें विद्याके दीपकका प्रकाश और अपने चमकतेहुए पूर्वजोंकी पवित्र स्मृतिका जीवित करना है। श्रद्ध श्रौर जंगली लोग भी पढ़े लिखे होते थे। सभी नर, नारी विद्या-सागरमें खुले स्नानका श्रानन्द लिया करते थे।

सत्य०—महाराज, हम कितने गिरे हैं ? कहां तो वह पर्वतका शिखर, श्रीर कहां यह रसातल !

महा०—प्यारे, वेद तुम्हारी जातिकी जान है । तुम्हारे मुरदा ढांचोंका प्राण है। इसीका फिर प्रचार करो, वही भाव, वही विचार और वही आदर्श फिर लौट पड़ेंगे। संसारके इतिहासमें ऐसे उतार-चढ़ाव आया ही करते हैं। पुरुषार्थ करो और दूसरोंसे कराओ। अविद्या-पिशाचीको देशके कोने कोनेसे दूर भगाओ। इसीमें कल्याणका सारा मूल-मन्त्र गुप्त है।

वस्तु०—श्रव में समका कि स्वामी द्यानन्द्जी महा-राजने इस बातपर इतना बल लगाया है। श्रव उनके पीछे उनके श्रनुयायियोंने भी विद्या-प्रचारको श्रपने कार्यका एक मुख्य श्रंग बना रखा है।

महा०-प्रत्येक वेदभक्तको ऐसा ही करना चाहिये। सुनो, भ्रागे भगवती क्या कहती है!

(४) मया सो अन्नमत्ति यो विषश्यति यः प्राणिति य ई शृणोत्युक्तम् । अमन्तवो मान्त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रुद्धिवन्ते वदामि ॥३२॥ ०—४॥

श्रर्थः—(यः) जो (वि-पश्यति) श्रच्झी तरह देखता, (यः) जो (प्राणिति) श्रच्झी तरह जीवन धारण करता (ई) श्रौर (यः) जो (उक्तं) कहे [वचन] को (श्र्योति) सुनता हैं, (सः) वह (मया) मेरेद्वारा (अन्नं) अन्नको (अति) खाता है [अर्थात उसका वास्तव जीवनका आधार में हूं ]। हे (अत्र ) विद्वान पुरुष, (अधि) [ध्यानसे ] सुन। (ते) तुक्ते (अद्विवं) विश्वास करने योग्य [बात] (वदामि) कहती हूं। [अपने चारों ओर दृष्टि-पात कर और देख] (ते) वे [कितने आदमी] (मां) मुक्ते (अमन्तवः) न जानते हुए [तेरे] (उप) समीप (चियन्ति) निवास कर रहे हैं ॥ ४॥

सज्जनो, वाग्देवी श्रापके सामने क्या सुन्दर, वैदिकजीवनका श्रादर्श रखती है। विश्वानको श्रपने जीवनकी श्राधारशिला बनाओ। उसके ऊपर विशाल भवन खड़ा करो। पर
यहीं बस न कर देना। श्रपने चारों श्रोर बसनेवाले भोंपड़ोंमें
भी देख लेना। उन्हें भी श्राश्वासन देना श्रौर श्रपने जैसा
बनानेका यत्न करना। प्रभुको प्रसन्न करनेका यही मार्ग है।
मौखिक जमा-खर्च करना बहुत सुगम है। सिद्धान्तको कार्यरूपमें लाना ही कठिन है। यश उसीका होगा, जो इस कड़े
मार्गपर चलताहुश्रा नहीं घबराएगा।

(५) अहमेन खयिमदं नदामि जुष्टं देनेभिरुत मानु-षेमिः । यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥३३॥ ०—६॥

श्रर्थः—(श्रहं) मैं (एव) ही (स्वयं) श्रपनेश्राप (इदं) यह (वदामि) कहती हूं।[इस मेरे कथनका](देवेभिः) देवताश्रों (उत) श्रौर (मानुषेभिः) मनुष्योंने (जुष्ट) सेवन किया है [ अर्थात इसकी सचाईका अनुभव किया है ]। (यं) जिसे (कामये) पसन्द करती हं, (तं तं) उसे अवश्य (उम्रं) शक्तिशाली (ब्रह्माणं) चारों वेदोंका वक्ता (ऋषिं) दीर्घदर्शी ऋषि (सुमेधां) अच्छी मेधासे युक्त (कृणोमि) बना देती हूं॥॥

यह सर्वानुभृत और स्वतःसिद्ध सचाई है। जिसपर सरस्वती दयालु होती है, वह क्या नहीं बन जाता ? जिधर पांव उठाता है, विजय-श्री हाथ बांधे श्रागे खड़ी होती है। यह प्रत्येक मनुष्यको स्वयं निश्चय करना चाहिये कि वह कहां तक ऊपर उड़ना चाहता है। प्यारो, विद्याके इस विस्तृत श्राकाशमें गतिकी कोई सीमा नहीं है। चले चलो, बढ़े चलो, यही श्रादि श्रौर यही श्रम्तका सन्देश है।

(६) अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ। अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥३४॥

श्रर्थः—(श्रहं) मैं (रुद्राय) रुद्ररूप [दग्रहधारी, नियम-पालक राजा] के लिये (धनुः) धनुषका (श्रा-तनोमि) चिल्ला चढ़ाती हुं, [ताकि वह ] (ब्रह्मद्विषे) ईश्वर, वेद श्रौर ब्राह्मण-धर्मके शत्रुदलका (शरवे) शस्त्रोद्वारा (उ) निश्चयपूर्वक (हन्तवे) नाश कर सके। (श्रहं) मैं (जनाय) जनताकेलिये (समदं) मिलकर श्रानन्द-प्राप्तिका साधन (कृणोमि) उपस्थित करती हुं, (श्रहं) मैं (द्यावापृथिवी) द्युलोक और भूमिमें (श्राविवेश) समा रही हूं॥ ६॥

जहां राजाका कार्य प्रजाश्रोंका रंजन श्रौर प्रेम है । वहां

उसे अच्छे पिता श्रोर गुरुके समान समयपर दगड भी धारण करना पड़ता है। कब प्रेमका समय है श्रोर कब दगड़का, इसीके विवेकपर उसकी कीर्त्ति श्रोर सिद्धि निर्भर है। विद्या-देवीकी पूजा उसे यह विवेक प्रदान करती है। वह ठीक ठीक न्याययुक्त रीतिसे संसारसे नास्तिक-बुद्धिवाले, तप, त्याग, दयादि सौम्यगुणोंका नाश करनेवाले, विश्वानके शतुश्रोंका दमन कर सकता है।

श्रोर, यह कितने महत्त्वकी बात कही कि मैं तुम्हें इकट्टा श्रानन्द प्राप्त करना सिखाती हूं। वेदकी विद्याका वस्तुतः श्रादर्श बहुत ऊंचा है। हम इसके प्रकाशमें खड़े नहीं होसकते। मिलकर श्रानन्द लेना कहां, श्रोर हमारा स्वभाव कहां १ पर, प्यारो, ऐसे चिह्न-चक्र पैदा होरहे हैं, जो विद्वानोंको उनकी नींदसे उघाड़नेवाले हैं। वेदका यह महत्त्व है कि यह विद्याद्वारा श्रानन्द-प्राप्तिको एक सांभी वस्तु बतलाता है।

(७) अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे । ततो वितिष्ठे भ्रवनानु विश्वोताम् द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥३५॥ ०—७॥

श्रथं:—( श्रहं ) मैं ( श्रस्य ) इस [ जगत् ] के (पितरं ) पालन करनेवाले [ द्यु-लोक ] को ( मुर्धन् ) [ माथेके समान ] ऊपर श्राकाशमें ( सुवे ) प्रेरित करती हूं।( मम ) मेरी ( योनिः ) जन्मस्थान ( समुद्रे ) समुद्रके ( श्रन्तः ) श्रन्दर ( श्रप्सु ) जलोंमें हैं। ( ततः ) वहांसे ( विश्वा ) सकल ( भ्रुवना ) लोकों ( श्रनु ) में ( वि-तिष्ठे ) फैल जाती हूं। ( वर्ष्मणा ) श्रपने शरीर

[ग्रर्थात् स्वरूप ] से (द्यां) द्यु-लोकको (उप-स्पृशामि) जा इती हूं॥ ७॥

द्युलोकमें सूर्य, चन्द्र, तारागण प्रभुकी विश्व व्यापिनी, ध्रम्थकार-नाशिनी, सर्व-प्रकाशिनी, विद्यामयी ज्योतिसे ही चमकते हैं। भगवानके ज्ञानमय नियमोंसे ही प्रेरित होकर, वे दिनरात प्रजाके हितमें पिताके समान होकर लगे रहते हैं। जलोंसे भरा समुद्र भी एक दूसरा संसार है। उसकी गहरीसे गहरी कन्द्रामें भी भगवानकी बुद्धिकी ज्योति जग रही है। वहांसे, मानो, उसकी किरणें निकल-निकलकर सारे लोकोंमें व्यापक होती हुई द्युलोकके भी पार जा पहुंचती हैं। \*

(८) अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा । परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभुव ॥३६॥ ०—८॥

अर्थ:—( ग्रहं ) मैं ( एव ) ही ( विश्वा ) सारे ( भ्रव-नानि ) लोकोंको ( ग्रा-रभमाणा ) बनाती ग्रौर धारण करती हुई

अर्थात् बुद्धिका सूक्ष्म तत्त्व हृदयके अन्तर्गत अंकुरित होकर, मस्तकके संस्कारोंको प्रहण करता और सारे विश्वको समझनेकेलिये, मानो, विस्तृत होता है।

<sup>\*</sup> आध्यात्मिक अर्थः-

<sup>(</sup>अहं) मैं (अस्य) इस (शरीर) के (पितरं) रक्षक [जीवात्मा] को (मूर्धन्) मस्तक [अथवा रीढ़की हड्डीके शिखर] में (सुवे) प्रेरित करती हूं।(मम) मेरा(योनिः) जन्मस्थान (समुद्रे)[मानसिक] समुद्रके (अन्तः) अन्दर (अप्सु)[विचारोंके] प्रवाहमें है।(ततः) वहांसे निकळ-निकळकर मैं सारे संसारमें फैळती हूं इत्यादि।

(वातः इव) वायुकी तरह (प्र-वामि) प्रकृष्ट गतिको करती हूं। (दिवा) चुलोककी अपेत्ता (परः) परे (एना) इस (पृथिव्या) पृथिवीकी अपेत्ता (परः) परे [अर्थात इनसे अधिक विस्तृत हूं, और मैं अपने विषयमें क्या कहूं] (महिना) महिमासे युक्त होकर (पतावती) इतनी (सं-वभूव) हूं॥ ॥

कोई लोक नहीं, कोई द्वीप नहीं, जहां भगवती वाग्देवीका सम्बन्ध न हो। परमेश्वर भी जो कुच्छ बनाता है, इसे धारण करके ही बनाता है। वायुका खुला संचार होता है। इसी प्रकार इस विचित्र-शिक्तका भी खुला प्रचार होरहा है। सकल निर्माणमें मुख्य साधन होनेकेकारण, मानो, यही सब कुच्छ बना रही है। सारी सृष्टिकी आदिमें भगवानका विज्ञानमय दिव्य शब्द ही होता है। भगवानके साथ उसका यह शब्द भी सर्वत्र व्यापक होरहा है। इसी आश्यको प्रकट करतीहुई भगवती कहती है कि पृथिवी और आकाशसे भी मैं परे हूं। और मेरे विषयमें क्या पृद्धोगे, अब मुक्ते अपनाओ, धारण करो और पूर्ण ऋदि, सिद्धिके स्वामी बनो।

सत्य०—भगवन, इन प्रकरणोंको सुनकर, मानो, श्रांखें खुल गयी हैं। ऐसे प्रतीत होने लगा है कि विद्याके श्रथाह सागरके किनारेसे भी श्रभी कोसों दूर पड़े हैं। श्रज्ञानका सिरपर इतना दबाव पड़ा है कि पग उठते ही नहीं। मार्ग बताश्रो, सच्चा मार्ग बताश्रो, जिसपर चर्ले, ताकि हमारा कल्याण हो।

माया०—सच्चे गुरो, कहां वे दिन थे जब 'श्रहंब्रह्म' के दो शब्दोंको रट-रटकर मेरा मस्तक श्रभिमानके नशेसे चकरा रहा था, और, श्राहा, कहां ये दिन भी श्राये हैं कि श्रागे मार्ग ही नहीं दिखाई नहीं देता। सारा मद उड़ खुका है। श्रव तो उसके पीछेकी शिथिलता-सी मारे जाती है। भगवन, श्रापके यह शब्द मेरे कानोंपर पड़ते हैं। अन्दर भी जाते हैं। उठना भी चाहता हूं। सरस्वतीके दीपकको जगाना भी चाहता हूं। पर स्वमावस्थाकी तरह श्रपनी छातीपर पत्थर-सा पड़ा हुश्रा श्रमुभव करता हूं। कुच्छ भय-सा प्रतीत होता है। कुच्छ संकोच, कुच्छ लज्जा श्रोर कुच्छ श्रीर श्रनेक प्रकारके विचार पदा हो-होकर मुक्ते दवाये चले जाते हैं।

महा०—प्यारो, मत घवराश्रो । यह तुम्हारी तड़प स्वाभाविक हैं । वेदके पवित्र सन्देशने तुम्हें जगाया है । श्रम्धेरेमें रहनेका स्वभाव पड़ खुका था । प्रकाश दुःसद्य प्रतीत होता है । पर शनैः शनैः श्रम्थास होजावेगा । विद्याका वास्तवमें कोई श्रन्त नहीं । प्रभुने बुद्धि दी है, मन दिया है । स्मृतिकी शिक्त बनायी है । श्रव तो ठीक प्रकारसे इन्हें प्रयोग करनेकी बात है । नित्य प्रातः उठकर भगवानकी श्राराधना करते समय उसके श्रनन्त ज्ञानका ध्यान किया करो । उस सर्वज्ञ प्रभुसे ही ज्ञानकी भित्ता किया करो । श्रौर साधन भी हैं श्रौर उनका श्रपने समयपर वर्णन भी करूंगा । परन्तु इस साधनसे सब नीचे हैं । कल में श्रापको उन मानसिक जापोंको सुनाऊंगा, जिन्हें श्राप इस प्रयोजनकेलिये प्रयोगमें लाया करें । उत्साहको धारण करो श्रौर जिस मार्गपर चले हो, इसीपर स्थिर रहो । सदा श्राशावान रहो, निराशाको पास न श्राने दो । सबसे पहिली बात जो वेद सिखाता है, वह यही है ।

माया०--बहुत अच्छा, महाराज, ऐसे ही करेंगे। सब प्रेमपूर्वक महात्माजीसे विदा हुए। वे सत्यकामको साथ लेकर नदी-तीरकी थ्रोर घूमने तथा नित्य-कर्म करनेके विचारसे चल पड़े।

## चतुर्थ खएड शरणागतकी टेर

दूसरे दिन सब भक्तजन ठीक समयपर पहुंच गये।
महात्माजी वहां न थे। श्राज वे सारा दिन बाहिर ही रहे थे।
दोपहरका भोजन भी न किया था। सत्यकाम यह बात श्रपने
साथियोंके पृञ्जनेपर सुना ही रहा था, कि महात्माजी भी श्रा
पहुंचे। सबने उठकर स्वागत किया।

महा०-क्या समय होगया ? बहुत प्रतीक्ता तो नहीं करनी पड़ी ? सूर्यके अनुमानसे ही आगया हूं।

सत्य०—नहीं, महाराज, श्रमी सब भाई श्रारहे हैं। सारा दिन श्रापने कुच्छ श्राहार नहीं किया। श्राक्षा हो, तो थोड़ा-सा गरम गरम दूध लाऊं।

महा०—विशेष ज्ञुघा तो नहीं। पर ऐसी ही आपकी भावना है, तो थोड़ा-सा ले आइए।

आज उनका मुखारविन्द कान्तिसे विकसित होरहा था। ऐसे तो सदा ही वहां मुस्क्यान बनी रहती थी, पर आज कुच्छ विशेषता थी। नदीके तटपर सारा दिन शुद्ध वायुका सेवन तथा एकान्त ध्यान करते रहे थे। ताज़े जलसे पञ्च-स्नान करके उन्होंने भक्तकी श्रद्धाका द्यभिनन्दन करतेहुए दूध पी लिया थ्रौर शान्त, गंभीर स्वरसे वेदमन्त्रोंका उच्चारण श्रारम्भ कर दिया। वह बल श्रौर वह मिठास ! श्रद्धुत समय बंध रहा था। तनिक भी शार न था।

(१) ये त्रिपप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि विभ्रतः । वाचस्पतिर्वेला तेषां तन्त्रो अद्य द्धातु मे ॥ ३७॥ श्रथ्वं०१।१।१॥

भ्रर्थः—(ये) जो (त्रि-सप्ताः) तीन गुना सात (विश्वा) सारे (रूपाणि) रूपोंको (विभ्रतः) धारण करतेहुए (परि-यन्ति) चारों भ्रोर विचरते हैं।(वाचस्पतिः) सब विद्याश्रोंकी रत्ता करनेवाला जगदीश्वर (तेषां) उनके (तन्वः) स्वरूपके (बला) बलोंको (मे) मुक्तमें (दधातु) धारण करे॥१॥

इस विस्तृत ब्रह्माग्रडमें विद्यमान पदार्थीका कोई अन्त है ? परन्तु हमारेजिये तो जगत सात ही प्रकारसे ब्रह्मा करने योग्य बन रहा है। पांच क्षानेन्द्रियां, मन और बुद्धि ही बाहिर और अन्दरके स्थूज भौतिक और सदम विचारात्मक जगतसे हमारा परिचय कराते हैं। सारिवक, राजिसक और तामसिक भेदसे सारी सृष्टि तीन प्रकारकी होकर इन सात द्वारोंसे हमारे पास आतीहुई इकीस प्रकारकी बन जाती है। इसीमें सब जोक, सब काज, सब गुण, सब कर्म, जो कुच्छ है, आ जाता है। सारा बज, सारा पराक्रम, सारा प्रकाश इन्होंमें है। हे जगदीश्वर, श्राप श्वानके श्रिधिष्ठाता हो। कृपा करो कि हम इन भिन्न भिन्न प्रकारके पदार्थों के तत्व और स्वरूपको ठीक ठीक समफतेहुए, उनके सार और बलको श्रपने श्रन्दर धारण करें। जैसे मधुमक्खी धत्तरे श्रीर गुलाबको श्रपने लिये उपयोगी बना लेती है, ऐसे ही हम भी सब पदार्थों का यथायोग्य उपयोग करें। किसीसे घृणा न करें। किसीको तुच्छ न समर्भे। भगवन, श्रापकी श्रद्धत रचनामें कोई वस्तु निर्श्यक नहीं, कोई हानि-कारक नहीं। हमारा श्रक्षान ही श्रपराधी है। हे देवों के देव, इस पर्देको हटाश्रो और श्रानका वर प्रदान करो। प्यारो, इस प्रकारकी भावना है, जिसके साथ प्रत्येक नर, नारीको श्रपने हैनिक कार्यका श्रारम्भ करना चाहिये।

(२) पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह । वसोष्पते निरमय मय्येवास्तु मिथ श्रुतम् ॥ ३८॥ ०--२॥

श्रर्थः — हे (वाचस्पते ) सकल सत्य विद्याश्रोंके नाथ ! (देवेन ) प्रकाशयुक्त (मनसा ) मनके साथ (पुनः) फिर (पिंह ) श्राश्रो । हे (वसोः-पते ) सकल पेश्वर्योंके स्वामिन, (निरमय ) [नाशको ] रोको [मेरी शक्तियोंको इधर उधर त्तीण मत होने दो ] (मिय एव मिय) मेरे श्रन्दर ही (श्रुतं ) सत्यशास्त्रोंके सुननेसे उत्पन्न सच्चा ज्ञान (ग्रस्तु ) विराजमान रहे॥ २॥

श्रह ! नाथ, मैं सोगया था । मुक्ते श्रपनी यात्रा भूत चुकी थी । मार्गमें मुक्ते भंग चढ़ गयी थी । मैं बेहोश होरहा था । श्राश्रो श्राश्रो, देव, श्राश्रो । मेरे सोयेहुए मनको फिर जगाओ। आओ, मेरे हृदयके स्वामिन, आओ। मेरे विकानके कोषकी रक्षा करो। मेरा ज्ञान सदा उपस्थित रहे। मेरा आचरण तथा व्यवहार सदा उसके अनुसार हो। भगवन, मुके विद्येपोंसे बचाओ। मुके कुमार्गीसे हटाओ। ज्ञान-मन्दिरकी ओर मेरे पांवोंको बढ़ाओ। मेरी पूंजी बढ़े, कम न हो।

(३) इहैवाभिवितन्भे आर्ली इव ज्यया । वाचस्पति-र्नियच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रतम् ॥ ३९॥ ०—३॥

श्रर्थः—हे भगवन ! (इह ) यहां [ मेरे मनमें ] (श्रिम-वि-तनु ) खुब विस्तार करो । [ ज्ञानद्वारा मेरे मनको फैलाश्रो ] (इव ) जैसे (ज्यया ) चिल्लेद्वारा (श्रात्नीं) [ धनुषके ] सिरोंको [खेंचा जाता है ] । (वाचस्पतिः ) सर्व विद्याश्रोंका पति (नि-यच्छतु ) [ मेरे मनको ] स्थिर करे, [ताकि ] (श्रुतं ) सुना-सुनाया [ ज्ञान ] (मिय एव मिय ) श्रच्छी तरहसे मेरे श्रन्दर (श्रस्तु ) रहे ॥ ३॥

जिस तरह कमान कसी जाती है, उसी प्रकार हमारा मन विस्तृत तथा कसाहुआ होना चाहिये। क्षानको स्थिर करें और बढ़ावें। क्षानस्वरूप परमात्मन ! हमें अपने अनन्त भगडारसे प्रकाश प्रदान कर।

(४) उपहृतो वाचस्पतिरुपासान् वाचस्पतिह्वयताम् । सं अतेन गमेमहि मा अतेन विराधिषि ॥ ४० ॥ ०-४॥

श्चर्थः—[ जब हमारेद्वारा ] (वाचस्पतिः) वाणीका पति परमेश्वर (उप-हृतः) बुलाया जावे, [श्चर्थात जब हम उसकी श्चाराधना करें ] (वाचस्पति) वाणीका पति (श्वस्मान) हमें

( उप-ह्नयताम् ) श्रपने समीप वुलावे । (श्रुतेन ) ज्ञानके साथ ( सं-गमेमहि ) मिले रहें। [ मैं ] (श्रुतेन ) ज्ञानसे [ कभी भी ] (मा ) मत (वि राधिषि ) पृथक् होसकुं॥ ४॥

भगवान हमारी भावनाको देखता है। उसे दृढ़ करनेकी आवश्यकता है। बस, फिर तो बुलानेकी देर है। वह अवश्य हमारी टेरको सुनता है। हमें क्षान ही सबसे पहिले मांगना है। उसीके हम भिखारी हैं। हमारा सत्य-क्षानसे सदा सम्बन्ध बना रहे। कभी वियोग न हो। सज्जनो, यह भाव मनको उमा-रनेवाले, विद्यामें रुचि पैदा करनेवाले, आत्मविश्वासकी दृढ़ नींवपर उच्चतम आदर्शको स्थापित करनेवाले हैं।

(५) संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः । संज्ञान-मश्चिना युविमहासासु नियच्छतम् ॥४१॥ अर्थवे० ७१४२।१॥

श्रर्थः—(नः) हमारा (स्वेभिः) अपने [ और ] (श्रर-ग्रोभिः) पराये लोगोंके साथ (संज्ञानं) मेल और इकट्ठा ज्ञान धारण करनेका व्यवहार हो। हे (अश्विना) अश्वियो ! (युवं) तुम (इह) यहां (अस्मासु) हमारे मध्यमें (संज्ञानं) मिलकर ज्ञान-प्राप्तिके व्यवहारको (नि यच्छतु) दृढ करो॥ ४॥

परस्पर शान्तिका जबतक व्यवहार न हो, ज्ञानकी उन्नति हो नहीं सकती। लड़ाई और भगड़ेमें विद्याका प्रचार रक जाता है। श्रतः जब वाचस्पति भगवानसे प्रार्थना करो, तो साथही श्रपने श्रन्दर सबके साथ मिलकर ज्ञानको उन्नत करनेकी भी धारणा दढ़ करो। ज्ञानके कार्योमें श्रपने और परायेके भाव मिटा दो। विद्या और ज्ञान सांमे ही समभने चाहिये। इसोमें विद्वानों की शोभा और कीर्त्त है। अश्वी, भूमि और आकाशके, सूर्य और चान्दके तथा अन्य कई शास्त्रप्रसिद्ध इकट्ठे मिलकर जगतका उपकार करनेवाले देवताओं के जोड़ों का सांभा नाम है। जैसे यह देवता मिलकर सारा सृष्टि-यश चला रहे हैं, मनुष्यों को चाहिये कि ज्ञान-यश्चमें वे भी मिलकर आहुतियां डाला करें।

(६) सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्मिहि मनसा दैच्येन । मा घोषा उत् स्थुर्वेहुले विनिर्हते मेषुः पप्तिदिनद्रस्याहन्यागते ॥ ४२ ॥ ०—२ ॥

श्रथे:—(मनसा) मनकेद्वारा (सं-जानामहै) मिलकर श्रान प्राप्त करें, (चिकित्वा) श्रानकेद्वारा (सं) मिलकर [श्रानको उन्नत करें], (दैव्येन) चमकतेहुए (मनसा) मान-सिक बलसे (मा युष्महि) हम श्रलग कभी न हों। (बहुले) बहुत (विनिर्देते) हानि होनेपर (घोषाः) [रोनेके] शब्द (मा) मत (उत स्थुः) पैदा हों। (श्रहनि) दिनके (श्रागते) श्रानेपर (इन्द्रस्य) इन्द्रका (इषु) वाग्र (मा) मत (पप्तत) गिरे॥ ई॥

मनहों और चमकता हुआ मन हो। ज्ञानसे ज्ञान बढ़ता है। दीपकसे दीपक प्रकाशित होता है। ज्ञानवान मनुष्य कौन है? जो आपत्तिमें हाहाकार नहीं मचाता। उसका मानसिक कोष ऐसे आड़े समयोंके लिये विचित्र शक्तिका संचय किये रखता है। इन्द्रका वाण और वज्र किनपर गिरता है? जो परीज्ञाके समय पूरे नहीं उतरते। अतः प्यारो, सर्वदा यह संकल्प करना चाहिये

कि हम प्रभुके श्रागे दग्रहनीय न बनें । हम ज्ञानीहों श्रोर उसके नियमोंका पालन करनेवाले हों। साधारणतया दिन तो बीततेहीं जाते हैं। पर हर एक व्यक्तिके जीवनमें कभी २ विशेष दिन भी श्राते हैं। भगवान, हमारे ज्ञानकी उस समय, मानो, परीज्ञा किया करता है। उस परीज्ञाके लिये सदा तथ्यारी करते रहना चाहिये। श्रोर सबसे उत्तम तथ्यारी नित्य इस प्रकारसे सोये हुए श्रपने श्रापको चेतावनी दे २ कर जगानाही है।

ः (७) ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते । एते सदिस राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः ॥४३॥ श्रथ्वं ७ ५४ १॥

श्रर्थः—[हम](श्रृवं) ज्ञानरूप स्तोत्र [तथा] (साम) शान्तिकारी उपासनाके गीतोंका, (याभ्यां) जिनके द्वारा [विद्वान लोग](कर्माणि) सब कर्म (कुवते) करते हैं, (यजामहे) धारण तथा पूजन करते हैं। (पते) यह (सदिस) सभा, [समाज श्रादि] में (राजतः) चमकते हैं (देवेषु) देवताश्रों तक (यज्ञं) यज्ञ [के फल] को (यच्छतः) पहुंचाते हैं॥ ७॥

जो महानुभाव ज्ञान श्रौर उपासनाको समभकर कर्म करते हैं, उनको सफलता होती है। श्रृचा ज्ञान बढ़ाने वाले स्तोत्र श्रर्थात अग्वेदका संकेत है। इस वेदमें मुख्यरूपसे वर्णनात्मक ज्ञान है। साम भिक्त, शान्ति, उपासनाके मुख्य साधन सामवेदकी श्रोर संकेत है। दोनों जीवनको विकसित करनेके लिये श्रावश्यक हैं। मस्तक चमकताहो श्रौर हृद्य प्रभुभिकके श्रानन्दसे उच्छल रहाहो।

वेद भगवानकी यह शिचा है कि सभा, समाज तथा

परिषद् आदिमें इनकी ही प्रतिष्ठा होनी चाहिये। वे समाज पूरी उन्नित नहीं कर सकते, जिनमें शारीरिक बल अथवा धनकी तो पूजा होती हो और विद्या तथा शान्त जीवनका निराद्र होताहो। उच्च आद्र्श यही है कि सुन्दर, सुडौल शरीरके अन्दर उज्ज्वल मन तथा विशाल, भक्तिसे रंगे हुए हृदयका निवास हो।

यज्ञ पूजा श्रोर उपकारका नाम है। ज्ञान श्रोर भक्तिकी वृद्धिका यह परिणाम होना चाहिये कि देवताओं का यज्ञके साथ संबंध जुड़ा रहे। जब जनतामें उनकी प्रतिष्ठा होगी, लोग उन्हें ध्यानसे सुनेंगे, वे भी प्रसन्न-चित्त होकर यज्ञकी साधनामें लगेही रहेंगे। श्रतः प्रातः उठकर ज्ञान श्रोर भक्तिकी महिमाको चित्तमें धारण करनेका श्रभ्यास करो।

(८) ऋचं साम यदप्राक्षं हिनरोजो यजुर्वलम् । एष मा तसान्मा हिंसीद् वेदः पृष्टः शचीपते ॥४४॥ ०—२॥

श्रथं:—(यत्) क्योंकि [मैंने] (ऋचं) ऋग्वेद [तथा] (साम) सामवेदसे (हिवः) श्राहुति (श्रोजः) पराक्रमप्रद् सूद्रम वीरता (यजुः) कर्म-विधि [तथा] (बलं) बल [के स्वरूप] को [भली भान्ति] (श्रप्रात्तं) पृञ्ज लिया [श्रोर जानकर जीवनयञ्जको श्रारंभ किया है।] (तस्मात्) इसलिये (श्रचीपते) हे सकल शक्तियोंके स्वामिन जगदीश्वर, (एषः) यह (पृष्टः) पृञ्जा हुआ (श्रर्थात्) गुरुकी तरह माना हुआ (मा) मुसे (मा) मत (हिंसीत्) मारे॥ ८॥

वेद सच्ची भक्ति तथा झानका उपदेश करता है। उसीके पाठसे वास्तविक बल श्रौर कर्मकी सुद्दमताका बोध होता है। जो मानव उसका श्राश्रय लेकर जीवनके कार्योंको करता है, उसे विश्वास होना चाहिये कि मेरा किसी प्रकारसेभी नाश नहीं होसकता। प्रत्येक मनुष्यको प्रातः इस मंत्रका जाप करना चाहिये श्रौर दिन भर इसके श्रनुसार जीवन चलाना चाहिये।

सत्य०—महाराज,क्या वेद दो ही हैं, ऋग्वेद और सामवेद शमाया०—प्रसिद्ध तो चार हैं, यजुर्वेद और अर्थव वेद भी। महा०—सत्य है, वेद चारभी हैं और एकभी है। चारों वेदोंक मंत्रोंको तीन भागोंमें विभक्त किया जाता है। वर्णनात्मक-स्तोत्रोंको ऋचाएं कहते हैं। भक्तिमें रस पैदा करनेवाली गीतियोंको साम कहते हैं। यजुओं द्वारा कर्मकागड कियाजाता है। एकही मंत्र तीनों रूप धारण कर सकता है। कहीं ऐसाभी माना है कि यजु गद्यमय होते हैं, शेष पद्यमय। अब कर्म तो ज्ञान और उपासनाके मध्यमें आजाता है। ज्ञान उसकी प्रेरणा करता है। भक्ति उसका परिपक रस है। अतः यहां ऋग्वेद और सामवेदकाही संकेत किया है। और, अन्तमें सबको मिलाकर वेदकी एकताभी बता दी है।

वस्तु०—महाराज, जहां लोग वेद न जानते हों, वहां उनका कल्याण कैसेहो ?

महा०—एकवार वेदके विचार चारों श्रोर फैल चुके हैं। जोगोंमें श्रमी तक कई सर्वतन्त्र सिद्धान्तोंका विश्वास पाया जाता है। सत्यको सभी पसन्द करते हैं। श्रसत्यको सब बुरा कहते हैं। यह वैदिक सन्नाइयां हैं, क्योंकि वेदने सबसे पूर्व इनका प्रचार किया। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रब वेदसे जोगोंका परिचय प्रायः न होनेके तुल्यही है।

माया०-तो क्या करना चाहिये।

महा०—मेरा भाव यह है कि जब आपके हृदयमें वेदके प्रति श्रद्धा पैदा होजावे, तो फिरआप इसको इसी प्रकार आगे २ पहुंचाते जावें। हमारा इतनाही कर्त्तव्य है। अच्छा तो, मैं आपके सामने आज प्रतिदिनके जीवनको आरंभ करते हुए धारण करने योग्य वैदिक भावनाओंको दर्शा रहा हूं। और, सुनिए।

(९) यदमे तपसा तप उपतप्यामहे तपः । प्रियाः श्रुतस्य भूयासायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ ४५ ॥

श्रयर्व० ७। ६१। १॥

श्रथः—हे (श्रक्षे) प्रकाशस्त्ररूप, प्रभो ! (यत्) क्योंकि [हम] (तपसा) तप द्वारा (तपः) तप [श्रौर] (तपः) तप (उप-तप्यामहे) श्रव्ञ्ची तरहसे तपते हैं। [इसिलये हमारी यह भावना है कि हमारा साधन सफलहो श्रौर हम] (श्रुतस्य) ज्ञानके (प्रियाः) प्यारे (श्रायुष्मन्तः) दीर्घ श्रायुवाले [तथा] (सुमेधसः) तीत्र बुद्धिवाले (भ्रयास्म) होवें॥ ह॥

(१०) अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः । श्रुतानि शृण्वंतो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ ४६॥ ०—२॥

श्रथः—हे (अग्ने) (वयं) हम (श्रायुष्मन्तः) दीर्घ काल तक जीते हुए (सुमेधसः) श्रच्छी बुद्धिवाले (श्रुतानि) श्रानकी बातोंको (श्रय्वन्तः) सुनते हुए (तपः)तप (तप्यामहे) तपते हैं, (तपः) तप (उप तप्यामहे) श्रापसे समीपका संबंध जोड़ कर तपते हैं ॥ १०॥ 58

सजानो, इन भावोंको सदा अपने हृदयमें स्थान देना होगा। तप तपनेका यह फल होना चाहिये कि हमारी आयु, बुद्धि श्रौर विद्या बढ़ें। हमारी रुचि मानसिक विकासकी श्रोर म् प्रिंचिक हो। ग्रौर फिर, जब कुच्छ स्वाद ग्राने लगे, तो फिर उसी साधनका सहारा पकर्ड़े श्रौर तप करें। श्रव ज्ञान तथा ईश्वरके श्रघिक समीप जाकर, विशेष साधना करें श्रौर श्रघिक लाभ प्राप्त करें। नित्य हमारा ज्ञानके प्यारोंसे मेलहो भ्रौर हम स्वयंभी ज्ञानके प्यारे बर्ने । कितनी सुन्दर भावना है । नित्य श्रभ्यास करनेसे यह विचार स्वभावके श्रंग बन जाते हैं। हमारी मानसिक प्रकृतिही ऐसी वन जाती है। बाहिरका जीवन इसी चित्रको प्रतिर्विबित करने लग जाता है । अन्दर बाहिर एक होनाते हैं।

(११) शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्रति । मा ते युयोम संद्रशः ॥ ४७ ॥ श्रथर्व० ७। ६८। ३॥

प्रर्थः ─हे (सरस्वति ) विद्यामिय देवते ! ( नः ) हमारे प्रति (शिवा) मंगलरूप (शंतमा) प्रतिकल्याग्यकारी तथा (सुमृडीका) सुख देनेवाली (भव) होवो । [हम] (ते) तेरे ( संदशः ) खुले द्रीनसे [ कभी भी ] ( मा ) मत (युयोम ) वंचित रहें॥ ११॥

हे भगवति, सत्यज्ञानरूपे, सरस्वति ! सदा श्रपने दर्शनों से कृतार्थ करती रहो । वेद घ्रपने भक्तोंको कितना विद्यासे प्रेम करना सिखाता है ? कोई विज्ञानका घातक वैदिकधर्मी नहीं समका जासकता। सञ्चा श्रार्य सदा विद्या श्रौर प्रकाशका पत्त-पोषक होना चाहिये।

(१२) सरस्रतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्रतीमध्वरे ताय-माने । सरस्रतीं सुकृतो हवन्ते सरस्रती दाग्जुषे वीर्यदात् ॥४८॥ ग्रथर्व० १८ । ४। ४४॥

श्रर्थः—(देवयन्तः) देवताश्रोंकी कामना करतेहुए [भक्त-लोग] (सरस्वर्ती) सरस्वतीको (हवन्ते) बुलाते हैं, (श्रध्वरे) [सारे संसारकी रत्ता करनेवाले] यक्षके (तायमाने) विस्तारके होनेपर (सरस्वर्ती) सरस्वतीको [ याजक लोग बुलाते हैं ]। (सुकृतः) पुग्यात्मा (सरस्वर्ती) सरस्वतीको (हवन्ते) बुलाते हैं। (सरस्वती) सरस्वती (दाशुषे) दानशीलको (वीर्य) बल (दात्) देती है ॥ १२॥

सरस्वतीकी घाराधनाके विना न विद्वान प्रसन्न होते हैं, न प्रभु निहाल करते हैं थौर न ही भौतिक शक्तियां पूरा लाभ पहुंचाती हैं। साधारण मनुष्यकेलिये द्याग केवल पानी गरम करती धौर रोटी पकाती है, परन्तु विज्ञानी क्या का क्या बना डालता है। यश्लोंका पूरा पूरा फल, सुदम तत्त्व-विद्या और घाध्यात्मिक-श्लानके विना प्राप्त नहीं होसकता। यह सरस्वती ही है जो भले, बुरेकी पहचान बताती है। धौर, प्यारे सज्जनो, सरस्वती ही दानीके धन्दर ऐसा बल देती है कि वह सब कंज्रसी धौर संकोचको त्यागकर दरिद्रोंकी पालनामें लग जाता है। वह पात्र कुपात्रका विवेक कर, सुदानको ध्रपना भूषण बनाता है। ध्रधिक क्या, जो कुच्छ भी भूत, वर्त्तमान धौर भविष्यत् है, वह इसी सर्वप्रकाशक, बलोंके बलके सहारे चलता है। यह प्रभुका दिव्य स्वरूप है। यही मधुर प्रसाद है, जिसकी भगवानके भक्त सदा कामना करते हैं।

भूषण श्रौर श्रतंकार हैं। वे वास्तवमें हमारे जोवनके श्राधार हैं। उनके विना हमारी दशा उन सखी हुई, पुरानी नदियोंके समान शोचनीय हो जाती है, जहां श्रव पानी नहीं श्राता।

लोक०—महाराज, ऐसे गुरु कहांसे आर्चे ?

महा०—बेटा, प्रभुकी रचनामें सब सामान मौजूद हैं। पुरुषार्थ करनेपर प्रत्येक बात सिद्ध हो जाती है। प्यारे, क्या तुम प्रयत्न करो, तो ऐसा जीवन धारण नहीं कर सकते?

लोक०--हमारे ऐसे भाग्य कहां ?

महा० — यही तो तुम्हारी भूल है। वेद प्रत्येक व्यक्तिके सामने एक जैसी बात रखता है। जो उसपर फूल चढ़ावेगा, वही तर जावेगा। मनको उज्ज्वल करो। बुद्धिको तीव करो। अपने आपको जगाओ। नींद्को त्यागो। सरस्वतीकी आराधना करो। भगवानका ध्यान करो। भावनाको दढ़ करो। यही मार्ग है। इसपर चले चलो। यात्रा लम्बी है। भय मत करो। एक दिन चोटीपर चढ़ जाओगे।

सत्य०—महाराज, बड़ा ऊंचा श्रादर्श है। यात्रा बड़ी जम्बी है। मार्गमें कोई सहायक दिखाई नहीं देता।

महा०—अरे, भोले भाई, जब मार्गपर मनुष्य पड़ता है, तो कई अपने जैसे साधक मिल जाते हैं। परस्पर हाथ बटाते हुए, दूसरेकी सहायता करते हुए चले चलो। अकेले हो, तब भी चिन्ता मत करो। ठीक साधन-सम्पत्तिको पैदा करो। आज जो विचार बताये हैं, उनका निरन्तर चिन्तन किया करो। कलसे उन साधनोंका वर्णन करूंगा, जिनको धारण करके इस प्रकारका यह सरस्वती-जागरण तुम्हारेलिये सदा सहारा बना रहेगा।



चमकतेहुए दीपकका जो सहारा मिलता है, वही हमारी दशामें उच पुरुषोंके जीवनोंके पाठका समको।

सत्य०—महाराज, प्रत्येक मनुष्यमें कोई न कोई दुर्वेलता पायी जाती है। क्या इस कारणसे विषयुक्त श्रन्नकी तरह यह श्रापका बतायाहुश्रा साधन हानि तो न करेगा?

माया॰—तो क्या सब ऋषि, मुनि और महात्मा दुर्ब-जतासे दूषित थे। कोई सोजह कजा सम्पूर्ण पुरुप नहीं हुआ ?

महा०—प्यारो, पूर्णता तो प्रभुका ही नाम है। देहधारी मनुष्यमें तो राग, द्वेप, मोह श्रादि द्वारा कभी न कभी निर्वलता श्रा ही जाती है। हमारी श्रवस्था तो कढ़ाईपर चढ़ायेहुए दूधके समान उवालोंसे भरी हुई है। परन्तु जो सच्चे साधक होते हैं, वे इससे घवराते नहीं। वे इस रहस्यको समभतेहुए दिन रात साधनमें लगे रहते हैं। गिर गिरकर ही तो सवार पक्का होता है। मूर्ख वह है जो गिरताहुश्रा श्रपनी गिरावटको नहीं जानता। विद्वान उसे खूब समभता है श्रीर सदा यहाशील बना रहता है। हम सब साधक हैं। हमारेलियें इन महापुरुषोंकी गिरावट श्रीर फिर उनका सम्भलना, ऊपर उठना श्रीर चमकना शिक्तासे भराहुश्रा होता है। हमारे श्रन्दर पूरी सहानुभृति पदा होती है श्रीर श्रपने मनको उसी श्रवस्थामें लाकर हम श्रनुभव करने लगते हैं कि सारी घटना हमारे साथ ही बीत रही है।

उप०-महाराज, महापुरुषोंके जीवनका निचोड़ क्या है ? महा०-उपरामजी, धारणाकी दृढ़ता और अपने सामने सदा ऊंचा जन्म रखे रहना ही सब महापुरुषोंका सामान्य चिह्न है। वे कहीं पैदा हुए हों, उनके सामने कितनी ही भिन्न भिन्न समस्याएं रही हों, यह गुआ उनमें सदा चमकता रहा है। इसके विना वे कभी अपने जीवनको हमारे लिये शिक्ताका स्रोत न बना सकते । इसी विषयमें आज वेद-सन्देश भी सुनिये। देखों, वेदभगवान किस प्रकारसे संकष्प और धारणाको हढ़ करनेकी प्रेरणा करता है।

(१) स्रिरिस वर्चोधा असि तन्यानोऽसि । आप्तुहि श्रेयांसमित समं क्राम ॥ ५१॥ अथर्व०२।११।४॥

श्रथः—[तुम] (स्रिरः) प्रेरणांसे युक्त (श्रसि) हो, (वर्चः-धाः) प्रकाशके धारण करनेवाले (श्रसि) हो,(तन्त-पानो) शरीरकी रज्ञा करनेवाले (श्रसि) हो। (श्रेयांसं) [वर्चमानसे] श्रिषक श्रन्द्री [श्रवस्था] को (श्राप्तुहि) प्राप्त होवो।(संग)[श्रपने] तुन्यसे (श्रति-क्राम) वढ़ो॥१॥

(२) शुक्रोसि आजोसि खरसि ज्योतिरसि । आप्तुहि श्रेयांसमित समं क्राम ॥ ५२॥ श्रथर्व०२।११। ॥

श्रथः—[तुम](शुकः) प्रकाशयुक्त (श्रमि) हो, (भ्राजः) दीप्तियुक्त (श्रमि) हो, (स्वः) सुगतिवाले [सुखस्वरूप] (श्रमि) हो, (ज्योतिः) चमक (श्रमि) हो। (श्रेयांसं) [श्रपने से] श्रच्हेको (श्राप्तुहि) प्राप्त होवो। (समं) [श्रपने] तुल्यसे (श्रति-क्राम) ऊपर उठो॥ २॥

यह भाव हैं, जिनका चिन्तन सब साधकोंको प्रापने सम्बन्धमें सदा करना चाहिये। हम प्रेरणासे युक्त हैं। हमारे हृदयमें सरस्वतीका मानस-सरोवर थलक-थलक कर रहा है। हम श्रन्धेरमें विचरनेवाले चमगादड़ श्रौर उल्लु श्रादिकी तरह तुच्छ जन्तु नहीं। हमारा श्रागा श्रौर पीछा प्रकाशसे सदा युक्त है। हम संसारके गगन-तलपर चमकतेहुए तारे हैं। शरीर दुबेल न रहेगा। मन निबेल न रहेगा। हम श्रपने बलसे श्रपने साधनोंको बलवान बनाएंगे, श्रौर वर्त्तमान श्रवस्थासे ऊपर उन्नत दशाको प्राप्त करेंगे। हम ऐसे ही पड़े क्यों सड़ेंगे। हमारे साथी श्रागे निकल रहे हैं। हम उनसे भी श्रागे निकलेंगे। हमारा उत्साह श्रौर पुरुषार्थ सदा हमारा साथ देगा। हम विजयकेलिये श्राये हैं। कभी पराजित होकर पीठ न दिखा-वेंगे पाप-स्वभाव शत्रु हमारे साथ टाकरा न लगावें। हमारा वेद हमें क्या सिखाता है?

(३) इदिमन्द्र शृणुहि सोमप यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि । वृश्वामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥ ५३॥ अर्थवे० २।१२।३॥

अर्थः — हे (इन्द्र) पेश्वर्यके स्वामिन, (सोम-प) [ प्रेरणा करनेवाली ] सोम [ आदि वस्तुओं ] के रक्तक! (यत) जब (त्वा) तुमें (शोचता) शोकातुर (हदा) हदयद्वारा (जोह-वीमि) वार वार पुकारता हूं, [तो मेरे ] इस [ निश्चय ] को [भी ] (श्र्यणिह ) सुन लेना। (यः) जो ( श्रस्माकं ) हमारे (इदं) इस ( मनः ) मनको ( हिनस्ति ) मारता है, (तं) उसे ( वृश्चामि ) [ में ] काट डालंगा, (इव ) जैसे ( वृज्ञं ) वृज्ञको ( कुलिशेन) कुल्हाडेसे [ काट डालते हैं ] ॥ ३॥ हमारे अन्दर आत्म-विश्वास होना चाहिये कि कोई

हमारी मानसिक हत्या नहीं कर सकता । हम सत्यके भक्त हैं श्रीर सत्यपरही डटेरहेंगे।जो हत्यारा हमारे मार्गमें खड़ा होनेका साहस करेगा, उसे अपने नाशके लिये तथ्यार रहना चाहिये।

(४) द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वेदेवासो अनु मा रभध्वम् । अंगिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छ-त्वपकामस्य कर्ता ।। ५४ ॥ श्रथर्व०—४॥

श्रथं:—हे ( द्यावा-पृथिवी ) भूमि श्रौर श्राकाश, ( मा ) मेरे ( श्रतु ) ऊपर ( दीधीथां ) प्रकाश करो, हे ( विश्वेदेवासः ) सकल देव-समृह ! ( मा ) मुक्ते ( श्रतु-रमध्वं ) पूरा पूरा सहारा हो । हे ( श्रंगिरसः ) प्राण्यवलसे युक्त, ( पितरः ) सबकी रज्ञा करनेवाले, (सोम्यासः) सौम्य स्वभाववाले विद्वानो ! (श्रपकामस्य) बुरी कामनाका ( कर्त्ता ) करनेवाला ( पापं ) हानिको ( श्रार्कृतु ) प्राप्त हो ॥ ४॥

कितना सुन्दर विवेक कर दिया है। प्रत्येक आर्यको इस बातका विश्वास होना चाहिये कि पापका फल बुरा ही होता है। उसे अपने हृदयमें प्राकृतिक और सामाजिक देवताओं की संगतिद्वारा इतना बल पैदा करना चाहिये कि जैसे समुद्रकीं प्रवल लहरें चटानों के साथ टकरें मार-मारकर रह जाती हैं, ऐसे ही हमारे अन्दर और बाहिरके शत्रु उबल-उबलकर काग होजावें, पर हमारा कुच्छ न बिगाड़ सकें।

(५) मह्यं यजन्तु मम यानि ह्व्याकृतिः सत्या मनसो मे अस्तु । एनो मा निगां कतमचनाहं विश्वेदेवासो अधि वोचता नः ॥ ५५॥ ऋक्०१०।१२८।॥ श्रथं:—(मम) मेरे (यानि) जितने (ह्न्या) यज्ञ [कियेहुए हैं, चे](महां) सुर्फ (यजन्तु)[इष्ट फलके साथ] जोड़ दें, (मे) मेरे (मनसः) मनकी (श्राकृतिः) भावना (सत्या) सर्खी (श्रस्तु) हो। (श्रह्तं) में (कतमतः चन) किसी भी (एनः) पापतें (मा) मत (जिन्मां) फंसं, (विश्वे-देवासः) सार देवता (नः) हुनें (श्रिध-बोचत) शिका तथा सहायता देते रहें॥ ॥

यहामें हविका डालना आध्यात्मिक त्यागका संकेत है \*। जो इस गृढ़ मर्भको समभ कर करता है, उसका यह उसके लिये पूर्ण फलका दाना होता है। जीवनमें सफल होनेका यह एक चिह्न है कि इवारी मागस्कि मावनायं सची हों। घारणा इतनी धर्माञ्चलार तथा इड़ हो कि उसका परिणाम सदा अच्छा ही निकले। इसीका नाम सिद्धि है। सदा यह विचार सम्मुख रखना चाहिये कि हम किसी प्रकारके पापके फंदेमें न फर्से। पापके असंख्यरूप हैं। पूर्व कहे प्रकारके सरस्वती-जागरण-द्वारा पुग्य और पापमें विवेक करते हुए, पापसे बचनेका संकल्प इढ़ करते रहें। इसका मुख्य उपाय सत्संगति

। इसिलिये वेद भगवान इसीपर श्रान्तिम पादमें विशेष बल देता है। भौतिक देवता चुप चाप उपदेश कर रहे हैं। लेने वालो, कुच्छ ले लो। सामाजिक देवता वाणीसे बोलते हैं, पर उससे भी श्रिधिक श्रपने व्यवहार तथा श्राचरणसे बोलत हैं। धन्य हैं वे नर नारी, जिनके कान इन देवताश्रोंके पवित्र

इस विषयका विस्तार देखो, वैदिकाश्रम प्रन्थमाला संख्या २, देव यज्ञपदीपिकाके अन्दर ।

शब्दोंसे नित्य शुद्ध होते रहते हैं। यह मानसिक तथा भ्रात्मिक भोजन है, इसके विना शरीरके कार्योंके चलतेहुए भी हम मुरदे हो जाते हैं॥

(६) पर्यावर्ते दुष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः । ब्रह्माहमन्तरं कृष्वे परा स्वमग्रुखाः ग्रुचः ॥ ५६ ॥

श्रर्थः—[मैं] (दुः-स्वण्यात्) बुरे स्वप्नकी दशासे (स्वप्न्यात्) स्वप्नमें होनेवाले (पापात्) पापसे (श्रभूत्याः) [सर्व प्रकारकी] मन्द श्रवस्थासे (पिर-श्रावर्ते) वापिस लौटता हूं। (श्रहं) मैं (ब्रह्म) वैदिकज्ञान तथा ध्यानको (श्रन्तरं) श्रोट (कृगवे) बनाता हूं। (स्वप्नमुखाः) स्वप्नमें दिखाई देनेवाले (श्रुचः) शोकोंको (परा) दूर [करता हूं)॥ ६॥

स्वप्न क्या है ? जागृतका ही उलटा सीधा नाच है । दिनके भाव तथा संकल्प स्वप्नावस्थामें आ दवाते हैं। अनेक वार हम व्याकुल हो चौंक उठते हैं \*। अनेक प्रकारके उस समय पड़े-पड़े पाप करते और फल भोगते हैं । यह हमारे जीवनके टेढ़ेपनका चिह्न है। वेदका उपदेश है, ज्ञान और ध्यानको, वेद और ओंकारके जापको ओट बनाकर अपनी रज्ञा करो। दीवारकी ओटमें धूपके तापसे जैसे बच सकते हो, क्रातेकी ओटमें वर्षाकी बुक्राड़से जैसे बच सकते हो, पेसे ही विश्वास रखों कि वैदिक-विचारोंकी सहायतासे स्वमके दु:खों

इसके साथ देखो, बेद-सन्देश, प्रथम-भाग, द्वितीय-संस्करण,
 पृष्ठ-संख्या ३०—३३।

श्रौर उनके मृलकारण, जागृतके कुसंस्कारोंकी मारसे बच सकते हो । सज्जनो, सोनेसे पूर्व यह भावना करो कि हम प्रभुकी क्व-क्रायामें निवास करते हैं, हमें कोई भय नहीं, कोई दुःख नहीं। निद्रा घ्रच्की श्रावेगी श्रौर जिस घ्रशान्तिकी श्रोर वेद इशारा कर रहा है, उससे छूट जाश्रोगे।

(७) अप्रक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः । प्रणीतीरभ्यावर्त्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ॥ ५७॥ प्रथर्व० ७ । १०४ । १॥

श्रर्थः—(पौरुषेयात) मनुष्यसम्बन्धी [साधारण दुर्बल-ताश्रों, विकारों तथा पाशव-व्यवहारों ] से (श्रप्रकामन्) दूर रहकर (देव्यं) देवताश्रोंके (वचः) शब्दको (वृणानः) श्रहण् करतेहुए (विश्वेभिः) सारे (सिखिभिः) साथियोंके (सह) साथ [हे साधक] (प्रणीतीः) श्रच्छी नीतियोंका (श्रभ्या-वर्तस्व) श्रच्छी तरहसे पालन कर॥ ७॥

सज्जनो, यहां वेद भगवान मनुष्य श्रौर देवतामें विवेक करताहुश्रा बतलाता है कि मनुष्य ही श्रपनी पाशविक-प्रवृत्तिका त्याग करके श्रौर दिव्य सम्पत्तिको धारंण करके देवता बन जाता है। देवता कोई श्रलग सृष्टि नहीं। जो जो विद्वान होकर ऊपर उठ जाता है, वही देवता कहलाता है। हां, वेद यह स्पष्ट कहता है कि श्रच्छे प्रकारसे जीवनका चलाना श्रत्यावश्यक है। देवताश्रोंकी वाणी ज्ञानकी वाणी है। वेदका पवित्र वचन दिव्य वचन है। परन्तु इसका श्रहण करना ही पर्याप्त मत समस्तो। वीर, धीर होकर, शनैः शनैः उसमें कहे उपदेशोंपर चलो।

अन्तमें वह बात कही है जिसे वर्त्तमान आर्य-लोग सर्वथा भूल चुके हैं। हम अब समभते हैं कि चोरी, डाका आदि कुकम ही मिलकर होते हैं। पर नहीं, वेद भगवानका यह आश्य है, कि अच्छे कार्य भी मिलकर ही सफल होते हैं। सारे सन्मार्गके साधक परस्पर सहायक होकर अपना और दूसरोंका कल्यागा करते हैं। नेकी और भलेका संगठन ही तो सब सामाजिक रोगोंका एकमात्र औषध है।

(८) यदस्मृति चक्रम किंचिदय उपारिम चरणे जात-वेदः । ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः ग्रुभे सिख्भयो अमृत-त्वमस्तु नः ॥ ५८॥ अर्थ्व० ७ । १०६ । १॥

श्र्यं:—हे (श्रग्ने) प्रकाशस्वरूप (जातवेदः) सबके जाननेवाले भगवन् ! (यत्) जो (किंचित्) कुच्छ [श्रानिष्ट] (श्रस्मृति) भूजके कारण [हमने] (चक्रम) कर डाला है, (चरणे) व्यवहारमें (उपारिम) चूक की है, (ततः) उस [भूल-चूक] से हे (भ्रचेतः) उत्तम श्रानवाले, (नः) हमें (पाहि) बचा। (श्रुभे) कल्याणकेलिये (नः) हम [तेरे] (सिक्थ्यः) मित्रोंकेलिये (श्रमृतत्वं) श्रमृतपद (श्रस्तु) हो॥ ॥

प्यारो, यह वही बात है, जिसका थ्राज थ्रारम्भमें इशारा किया जाचुका है। मनुष्यसे किसी न किसी प्रकारसे मृज-चूक होती ही रहती है। तो क्या ऐसी श्रवस्थामें वह डूब मरे। वेदका धर्म इसके विरुद्ध है। परमात्माकी मित्रतासे मन्द संस्कार शनैः शनैः श्रच्छे होजाते हैं। इसी श्राशयसे वेद भग-चान कितना बड़ा श्राश्वासन देता है, जब मृले, भटके लोगोंके सामने भी वह अमृतपदकी प्राप्तिका ऊंचा आदर्श रखता है। क्यों न हो, मनुष्यके आत्मामें तो कोई विकार नहीं आसकता। यह तो अन्तःकरणका ही आवरण है। सच्चे ज्ञान और भग-वानके प्रसादसे जब वह द्रेण निर्मल हुआ, तो बस सब कल्याण ही कल्याण है। अतः सच्चे साधकोंको कभी हताश और निराश न होना चाहिये। भावनाको स्थिर करके लगे रहना चाहिये।

(९) आक्तिं देवीं सुभगां पुरोदघे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु । यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु वि-देयमेनां मनासि प्रविष्टाम् ॥ ५९॥ अर्थ्व०१६।४।२॥

श्रर्थः—[मैं] (देवीं) प्रकाशमान (श्राकृतिं) मान-सिक विचारमयी भावनाको, [जो कि] (सुभगां) पेश्वर्यकी दात्री है, (परः-दधे) सम्मुख रखता हूं, [वह] (चित्तस्य) चित्तकी (माता) माता (नः) हमारेखिये (सुहवा) बुलानेमें श्रासान (श्रस्तु) हो। (यां) जिस (श्राशां) श्राशाको (एमि) जस्य बनाऊं, (सा) वह (केवली) पूर्णरूपसे (मे) मुक्ते (श्रस्तु) प्राप्त हो। (पनां) इसे (मनसि) मनमें (प्रविष्टां) प्रविष्ट हुई-हुईको (विदेयम्) पाऊं॥ ६॥

दढ़ भावना ही चित्तकी सम्पूर्ण शक्तियोंके विकासके करनेवाली माता है। इसीके बलसे हम अपनी सब आशाओं और कामनाओंको पूरा करते हैं। भावना दढ़ हो, तो सममो कि हृदयमें वह आशा पहिले ही पूरी होचुकी है। स्थूलप्राप्ति चाहे पीछे हो, परन्तु अपने अन्दर इतना विश्वास होता है कि

सुद्मरूपसे प्राप्तिका भ्रानन्द पहिलेसे ही भ्रारहा होता है। प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि इस मानसिक शक्तियोंकी माताकी ठीक ठीक पूजा करना सीखे। इसके विना मार्गका खुलना भ्राति कठिन होगा।

(१०) आक्त्या नो बृहस्पत आक्त्या न उपागिह । अथो भगस्य नो घेह्यथो नः सुहवो भव ॥६०॥ ०—३॥

श्रर्थः—हे (बृहस्पते) सब विद्याश्रोंके पालक देव ! (नः) हमें (श्राकृत्या ) सर्व विद्याश्रोंकी सारमयी भावनाके साथ (उपागिह ) प्राप्त होवा । (श्रथ-उ) श्रौर (नः) हमें (भगस्य) पेश्वर्य (धेहि) धारण करा (श्रथ-उ) श्रौर (नः) हमारेजिये (सुहवः) श्रासानीसे बुलाये जासकनेवाले (भव) बनो ॥१०॥

सजनो, वह कौनसा पेश्वर्य है, जिसे यह आकृति देवी नहीं दिला सकती। अधिटत घटनाओं को घटानेवाली, आश्चर्य-रूप चमत्कारों की करानेवाली, पशुसे मनुष्य और मनुष्यसे देवता बनानेवाली, निद्राको जागृति और जागृतिको पुरुषार्थमें बदलनेवाली, इस देवीकी सदा आराधना करते रहना। इसे अपने हृदय-मन्दिरमें आदरका स्थान देना। यह सब पेश्वर्यों और कोषोंकी ताली है। यह भगवानके चरणों के साथ हमारे चित्तों को जोड़नेवाली सुनहरी डोरी है। यह मानवी शिक्तयों की महाशिक्त है। प्यारो, इसका साथ दो और इसकी सहायता लो। देखो, यह क्याका क्या बना देती है। तुम उन्नतिके मार्गके पिथक हो। अच्छी बात है। वेद तुम्हें उपदेश करता है कि सबसे पहिले अपनी धारणा पक्की करलो।

ललकारकर कह दो कि हमारे साथ तुम्हारी मित्रता न हो सकेगी। कोई तुम्हारा संबंधी पापी है, तो उसके पापको निकाल दो। वह व्यक्ति घृणा करने योग्य नहीं। उसपर दया करो ध्रौर सदा उसका सहारा बनो। सुनिये, वेद भगवानके शब्द तो बड़े स्पष्ट ही होते हैं।

(१) न बहवः समशकन्नार्भका अभिदाधृषुः । वेणो-रद्गा इवाभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥ ६१॥

ग्रथर्व०१।२७।३॥

ध्रथः—(बहवः) बहुत से [मिले हुए कुच्छ] (न) नहीं (सम-ध्रशकन) कर सके, (न) नहीं (ध्रभेकाः) थोड़े (ध्रमि) सामने (दाधृषुः) खड़े हो सके। (वेगोः) बांसकी (ध्रद्गाः इव) सुखी शाखाध्रोंकी तरह (ध्रघायवः) पापी लोग (ध्रमितः) दोनों तरहसे (ध्रसमृद्धाः) ध्रसफल रहे हैं॥ १॥

हरा २ बांस बदलता हुआ दिखाई देता है, पर किनारोंपर पड़ी हुई शाखाएं कुच्छ कालके पीछे न बढ़ती हैं और न फूलती हैं। इसी प्रकार पापीका जीवन सखे बांसकी तरह नीरस है पापी लोग चाहे मिल २ कर समृह बनावें और चाहे ध्रलग २ ध्रनर्थ किया करें, उनका कल्याण नहीं हो सकता। पापका परिणाम सदा बुरा ही होता है। इसलिये हम पापका साथ छोड़ते हैं। इसे ध्रगले मंत्रमें खोलकर कहा है।

(२) दौष्वप्नयं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः । दु-णिम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥ ६२ ॥ अथर्व० ४ । १७ । ४॥ श्रर्थः—(हम) (श्रस्मत्) श्रपने श्रन्दरसे ( दौष्यप्न्यं ) बुरे सोनेको (दौर्जीवित्यं ) बुरे जीवनको (रहः ) राज्ञसी भावको (श्रभ्वं) श्रनर्थको (श्रराय्यः) कंगलेपनोंको (सर्वाः ) सारी (दुर्-नाम्नीः) बुरे नामोंवाली (दुर्-वाचः) बुरी वाणियोंवाली [पाप-वृत्तियों] को (नाशयामिस) नाश करते हैं ॥ २॥

उस पक्की धारणाको अब लगा दो। इन निन्दित बातों मेंसे तुम्हारे अन्दर कोई प्रवेश न कर सके। दिन भर अच्छा कर्म करो, ताकि नींद अच्छी आवे। राज्ञसी भावोंका त्याग करो। सदा अच्छे विचारोंको बढ़ाओ और बुरी वृत्तियोंको दबाते रहो। क्यों सत्यकाम, अब तो सड़क दिखाई देती है!

सत्य०--हां, महाराज ! वह तो मेरी घबराहट ही थी। महा०--ग्रोर सुनते चिलये!

(३) अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसित । अक्ष्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट् करिक्रति ॥ ६३ ॥ श्रथर्व० ४।१८।३॥

श्रर्थः—(यः) जो (श्रमा) श्रपने हां (पाप्मानं) पापको (कृत्वा) करके (तेन) उसके द्वारा (श्रन्यं) दूसरेको (जिघांसति) हानि पहुंचाना चाहता है, [वह भूजकर रहा है, शीघ्र ही ] (तस्यां) उसकी शिकके (दग्धायां) नष्ट हो जानेपर (बहुजाः) बहुतसे (श्रश्मानः) पत्थर [उसके सिरपर] (फर् करिकृति) फर् २ करके गिरगे हैं॥३॥

पापी दूसरोंकेलिये घरपर श्रनिष्ट सोचता श्रौर गढ़े खोदता है पर, मूर्ख जानता नहीं कि पर्देके पीछे उसका नाश कितना समीप होकर उसपर घर रहा है। कुच्छ समय तक तो प्रतीत होता है कि पापीके कार्य सिद्ध हो रहे हैं पर, वेद यह विश्वास दिजाता है कि पापका अनत बुरा ही है \*।

(४) सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् । अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं निद्धे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ॥ ६४ ॥ अथर्व० ४ । ६ । ७ ॥

श्रथं:—(सर्यः) सर्य (मे) मेरी (चत्तुः) श्रांख है, (वातः) वायु (प्राणः) प्राण है, (श्रन्तरित्तं) श्रन्तरित्तं (श्रात्मा) है, (पृथिवी) (शरीरं) शरीर है। (श्रहं) में (नाम) वस्तुतः (श्रस्तुतः) न ढका हुश्रा (श्रयं) विद्यमान (श्रिस्म) हूं। (सः) वह (में) (श्रात्मानं) श्रपने श्रापको (गोपीथाय) इन्द्रियोंकी पूर्ण उन्नतिके लिये (द्यावापृथिवीभ्यां) भूमि श्रौर श्राकाशके सामने (निद्धे) रखता हूं, [वे मुक्त पर पूरा प्रभाव डालें] ॥४॥

पापमें श्रक्ति पैदा करके वेद साधकको उपदेश करता है कि वह श्रपने श्रन्दर पूर्ण शक्तिकी लहरको श्रनुभव करे।

<sup>\*</sup> मनुमहाराजने भी इस भावका विस्तार किया है, देखो, " न सीदन्निप धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् । अधार्मिकाणां पापानामाञ्चपश्यिन्वपर्ययम् ॥ नाधर्मश्चिरितो छोके सद्यः फलित गौरिव । शनैरावर्त्तमानस्तु कर्तुमूंलानि क्रन्ति ॥ अधर्मेणेधते तावत्ततो भद्राणि पश्यित । ततः सपलाञ्जयति समूलस्तु विनश्यित ॥ मनु० ४।१७९,१७२, १७३॥

विस्तृत भौतिक देवताओं के सामने निवास करताहुआ, विशेष शक्ति और बलका संग्रह करे। उसे विश्वास होना चाहिये कि अब पाप मुक्ते दबा नहीं सकता। पूर्व शुटियों के कारण जो जो कमी होगयी है, उसे अब पुनः पूर्ण करनेका यल करे। प्रकृतिके सुन्दर उद्यानमें शुद्ध जल और वायुका सेवन करे और धार्मिक भावों को उन्नत करे। यह सब रोगों को दूर करनेवाली दिन्य ओषि है। हमारे चारों ओर पवित्रतासे युक्त होकर सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, पृथिवी और अग्नि आदि सृत संसारका उपकार कर रहे हैं। सज्जनो, देखो, वेदका उपदेश है कि मनुष्य अपने इद-गिर्दकी अद्भुत रचनाके साथ इस पवित्रताको ग्रहण करनेके लिये पूर्णत्या पक्जान होकर रहे। सुनो।

(५) पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया । पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ॥ ६५॥

श्रथर्व० ई। १६। १॥

भ्रथः—(मा) मुक्ते (देवजनाः) देवजन (पुनन्तु) पवित्र करें।(मनवः) मननशील विद्वान (धिया)बुद्धिद्वारा (पुनन्तु)पवित्र करें।(विश्वा)सारे(भृतानि)भृत (पुनन्तु) पवित्र करें।(पवमानः)पवित्र करनेवाला भगवान (मा)मुक्ते (पुनातु)पवित्र करे॥४॥

परमेश्वर तथा उसकी सोमादि विभृतियां तो सदा पवित्र करती ही रहती हैं। मनुष्य अपनी अविद्याके कारण उनके अच्छे प्रभावसे विश्वित रहता है। पूर्व कहे प्रकारसे अन्धकारको दूर करना तथा इन शक्तियोंसे लाभ उठानेका संकल्प दृढ़ करना ही इस प्रार्थनाको सिद्ध करनेका मुख्य साधन है।

(६) पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे । अथो अरिष्टतातये ॥ ६६ ॥ ०--२॥

श्रर्थः—( पवमानः ) पवित्र करनेवाला भगवान ( कत्वे ) पुरुषार्थ ( दत्ताय ) बल ( जीवसे ) जीवन-शक्ति ( श्रथ-उ ) श्रौर इसी प्रकार ( श्ररिष्टतातये ) श्रारोग्यके [ लाभके ] लिये ( मा ) मुक्ते ( पुनातु ) पवित्र करे ॥ ई ॥

हम पवित्र क्यों हों ? इस प्रश्नका वेद् भगवान कितना पूर्ण उत्तर देता है। पवित्र रहनेसे शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य बढ़ता है। स्वस्थ शरीरके अन्दर स्वस्थ मनका निवास हो और उसमें शुद्ध जीवात्मा रहकर जीवन-यात्राको पूरा करे, तो क्यों न उसका जच्य पूरा हो ? अपवित्र रहनेसे न केवल शरीरको रोग दबाते हैं, वरन बुद्धिपर भी आवरण आजाता हैं। यह पवित्रता स्थायीरूपको कैसे धारण करे ? इसका उत्तर सुनो।

(७) उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । अस्मान् पुनीहि चक्षसे ॥ ६७॥ ०—३॥

श्रर्थः—हे (देव) प्रकाशस्वरूप (सवितः) प्रेरणा करने वाले भगवन ! (पिवत्रेण) पिवत्र करनेवाले [श्रपने तेज] (च) श्रौर (सवेन) प्रेरणा [तथा पुरुषार्थ] (उभाभ्यां) दोनोंकेद्वारा (श्रस्मान्) हमें (पुनीहि) पिवत्र कर, [तािक] (चन्नसे) [हम श्रपने मार्गको ठीक ठीक] देख सकें॥७॥

पानीका कुत्रां भरा पड़ा है। ऊपर सूर्यका प्रकाश नित्य होता है। परन्तु लोगोंने पुरुषार्थ छोड़कर नलके लगवाकर, कुएंसे पानी निकालना बन्द कर दिया है। श्रापको पता है, वह पानी समय पाकर सड्ने लगेगा । सूर्यका तेज पवित्र करनेवाला है। पर वह पर्याप्त नहीं। पानी निकलता रहेगा, तो कुन्रां शुद्ध रहेगा । यही श्रवस्था तालाबकी है । पुराना पानी निकालो, नया डालते रहो । सज्जनो, यही तुम्हारे शरीरकी बात है। श्राजका भोजन खाया जाकर श्रपना कार्य करके शरीरमें रच जाता है। स्वस्थ रहना चाहो, तो यह श्रवश्य होगा कि शरीरके सर्व प्रकारके मलका बाहिर निकास हो श्रौर नयी त्रावश्यकतात्रोंकेलिये नया भोजन ब्रन्दर जाये। यही श्रवस्था मानसिक सरोवरकी है। श्राज एक बालक पढ़ने बैठता है। घरमें सम्बधियोंके ब्रायेहुए पुराने पत्रों ब्रौर चिट्ठियोंको भी बहुमूल्य पुस्तकें छौर विद्याके चिद्व समक्तकर पाठशालामें श्रपने बालोपदेशके साथ बांधकर लेजाता है । कुच्छ वर्षीके पीछे उसके मेज़के नीचे पड़ीहुई रहीकी टोकरीमें वैसे ही फाड-फाडकर फैंकेहुए पत्रोंको उसका लड़का या छोटा माई उठा रहा होगा।

वेद भगवान् कितनी सचाईको प्रकट करता है। प्रकाश भी चाहिये और नई प्रेरणाभी चाहिये। तभी दृष्टिका विस्तार होता है। नयी २ बातोंका झान होता है। अनुभव बढ़ता है। पवित्र और अपवित्रका अलर्छ। भेद खुळता है। अझानवश हम कई वस्तुओं में अपवित्रताकी भावना किये होते हैं। ज्यों २ अनु-भवमें उन्नति होती है, अपनी भूळका पता छगता जाता है। इसिलिये पिवत्र बनो और पिवत्र रहनेके लिये पुरुषार्थीभी बनो। हमारे अंग और प्राण चलतेही रहें, तभी स्वास्थ्य ठीक प्रकारसे धारण होसकता है।

(८) यो नः पाप्मन् न जहासि तम्र त्वा जहिमो वयम् । पथामनुन्यावर्त्तनेऽन्यं पाप्मानुपद्यताम् ॥ ६८ ॥ श्रथर्व० ६ । २६ । २ ॥

अर्थः—हे (पाष्मन्) पाप, [तुम] (यः) जो (नः) हमें [अपने आप] (न) नहीं (जहासि) छोड़तेहो, (तम्) [उस] तुझको (उ) निश्चय करके (वयं) हम [ही] (जिहिमः) छोड़ते हैं। (पथां) मार्गौंके (ज्यावर्त्तने) अलग २ फटनेके स्थानपर (अनु) पहुंचाहुआ (पाष्मा) पाप (अन्यं) दूसरे [मार्ग](अनु) पर (पद्यताम्) चले॥ ८॥

सन्जनो, पाप अपने आप भला कब किसीको छोड़ता है। यह तो अभ्याससे बढ़ताही है। व्यसनी आदमी बुढ़ापेमें अपनी वासनाओंको अशिक के कारण पूरी नहीं कर सकता । परन्तु उसे शान्ति नहीं मिलती। विषयोंने उसे छोड़ा है, उसने उन्हें नहीं छोड़ा। आगपर जितना घो या तेल डालोगे, वह उतना अधिकही भड़केगी\*। शान्ति मार्ग बदललेनेमें है । अपनी शिककी परीक्षा पापके सामने साधारण साधकके लिये अच्छी नहीं। जैसे चौराहेमें पहुंचकर मनुष्यका साथ दूर जाता है । प्रत्येक अपने २ घरकी ओर चल देता है। ऐसेही वेद भगवान

<sup>\* &#</sup>x27;'न जातु कासः कासानामुपभोगेन शास्यति । इविषा कृष्णवर्क्षेव भूय एवाभिवर्षेते " ॥ मनुः २ ॥ ''

शिक्षा देता है कि हमें स्वयं समझ आनेपर पापसे अपना मार्ग अलग कर लेना चाहिये। इसीमें हमारा कल्याण है। अपनी धारणा पक्की करके पापको स्पष्ट कह दो कि हमारा मार्ग और है, तेरा मार्ग और है।

माया०—भगवन्, यह पाप हमारे अन्दर कहांसे आजाता है ?
महा०—प्यारे, पाप बुरे संस्कारोंका फल है । बुरे संस्कार
बुरी संगितिके फल हैं । पुण्यात्माओंका संग दाष दूर करता है ।
बुरोंका संग अच्छेकोभी बुरा बना डालता है । अतः वेद इस
विषयमें बड़ा स्पष्ट उपदेश करता है ।

(९) बृहस्पतिर्नः परिपात पश्चादुतोत्तरस्मादधराद-घायोः । इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सिखम्यो वरिवः कुणोतु ॥ ६९ ॥ श्रुक्० १० । ४२ । ११ ॥

अर्थः—(बृहस्पतिः) सब विद्याओं का स्वामी (नः) हमें (पश्चात्) पीछे (उत) और (उत्तरस्मात्) ऊपर (अधरात्) नीचे (पुरस्तात्) आगे (उत) और (मध्यतः) मध्यसे (नः) हमें (अघायोः) पापी [की संगति] से (परिपातु) बचावे। (इन्द्रः) परमैश्वर्यका स्वामी (सखा) [हमारा सच्चा] मित्र (नः) हमें [अपने] (सखिभ्यः) मित्रोंके प्रति (वरिवः) कल्याण और सुखको (कृणोतु) करे॥ ९॥

प्रभु हमारा सच्चा मित्र है। उससे हम सबसे अच्छी बात यही मांगते हैं कि हम बुरी संगतिसे बचे रहें। विद्याके प्रकाशसे बुरे और मेलका विवेक होगा। भलेके मेलसे पेश्वर्य मिलेगा। प्यारो, इस कारणसे बृहस्पति और इन्द्र, इन दो

नामोंसे भगवान्का संकेत किया है। वेदके एक २ राब्दमें विशेष बल और सौन्दर्य भरा है।

(१०) द्रुपदादिव मुमुचानः खिन्नः स्नातो मलादिव । पूर्तं पवित्रेणेवाज्यमापः शुंधन्तु मैनसः ॥ ७०॥

यजु० २०। २०॥

अर्थः—(इव) जैसे (द्रुपदात्) ख्रंदेसे (मुमुचानः) छूटा हुआ [पशु स्वतंत्र होता है ] (इव) जैसे (स्विन्नः) पसीना लेकर [या] (स्नातः) नहाकर [मनुष्य] (मलात्) मलसे [छूट जाता है ] (इव) जैसे (आज्यं) घी (पवित्रेण) छाननीं से (पूतं) [छन कर ] शुद्ध होता है [पेसे ही ] (आपः) जल (मा) मुझे (पनसः) पापसे (शुंधन्तु) शुद्ध करें ॥ १०॥

सत्य०—महाराज, आपने कुच्छ दिन हुए बतायाभी था और बातभी स्पष्ट है कि जलका केवल शरीर परही प्रभाव पड़ सकता है।

महा०—बेटा, विल्कुल ठीक है। उदाहरणों में पसीने तथा स्नानद्वारा शुद्धिका वर्णन करके फिर जलके संकेतका अभिप्राय यह है कि इस शुद्ध तथा स्वतंत्र होनेकी भावनाको सदां बनाये रखना चाहिये। जल शान्तिका चिह्न है। अतः पीते, नहाते, मुखादि घोते समय मानसिक शान्तिकाभी विचार करे।। वह विना पापको छोड़े नहीं होसकती। अतः श्रुति देवीका भाव यह है कि साधकोंको सदा सखी शान्तिकी प्राप्तिकेलिये पापसे घृणा तथा पुण्यसे पेमका भाव अपने अन्दर बनाये रखना चाहिये।

## तृतीय खएड पश्चात्ताप श्रोर पुनरुद्धार ।

लोक०—महाराज, कल आपने जो उपदेश किया, वह था तो ठीक, पर... ... ... ... ...

महा०—हां २, कहो रुक क्यों गये ? वस्तु०—पर पाप फिर घेर छेता है, क्यों छोकेश, यही बात है ?

लोक०-जी हां।

महा०—वेद भगवान् हमारे स्वभावको अच्छी तरहसे जानता है। इस लिये इस दुर्बलताका भी वहां संकेत करके उपाय बतलाया है।

सत्य०-महाराज, आज यही प्रकरण सुनाइए।

महा०—मेरा पहिले हीसे पेसा ही विचार था। कलके कथनके पश्चात् इसी बातका स्वाभाविक प्रकरण है। धार्मिक स्वास्थ्यका यह पहिला चिह्न है कि मनुष्य जब कोई पाप करे, तो उसके लिये पीछे शोकातुर हो। इस पश्चात्तापका यह आशय है कि वह अन्दरसे दुः बी होरहा है। पेसी अवस्था कुच्छ देर रहेगी, उसके पश्चात् या तो पाप छूट जावेगा और या आत्मा इतना दुर्बल हो जावेगा कि अनुभव करनाही छोड़ देगा। पापके अभ्यास के साथ पश्चातापका भी अभ्याससा हो जाता है और फिर यह एक कीड़ासी बन जाती है। इस लिये, प्यारो, यह

बड़ी सुक्ष्म दृष्टिकी बात है । पूरा प्रयत्न करते हुए, सच्चे पश्चात्तापको अपनी शुद्धिका साधन बनाना चाहिये।

माया०—महाराज, यह कैसे जाने कि पश्चात्ताप कब केवल दिखावा ओर कब असली होता है ?

महा०—वेटा, आरंभमें तो पश्चात्ताप असली ही होता है। यदि उसी समयसे इसके साथ दूसरे साधनोंपर हदतासे आचरण आरंभ कर दिया जावे, तबतो यह हमारेलिये बड़ा उपकारी होता है। और, यदि केवल रो धो कर फिर और कुछ न करें, तो विशेष लाभ नहीं होता। हां, दुर्बलता बढ़ती है।

सत्य०—क्या पश्चात्ताप किसी गुरु या मित्रके सामने करना चाहिए?

महा०—यह भी बड़ी विकट समस्या है। कई संप्रदायों में यह प्रधा होती है। लोग अपने गुरुओं के आग मनकी व्यथाका वर्णन करके समझते हैं कि शान्ति हो गयी, परन्तु उसके कई बुरे परिणाम होते हैं। मनुष्यों में परस्पर रागद्वेष रहते ही हैं। पिछे छड़ाई झगड़ा होता और अशान्ति बढ़ती है। व्यक्तिका अपना उत्तरदायित्व भी कम हो जाता है। पाप करनेमें भय भी शनैः २ कम हो जाता है। अतः पश्चात्तापका करना निष्फलसा हो जाता है। आज भगवान कृष्ण और अर्जुन जैसे गुरु, शिष्य या मित्रोंके जोड़ आसानीसे नहीं मिलते। इसिलये हमें यही चाहिये कि अपना रोना अपने हदयके राजा, परमेश्वरके आगे ही रोया करें। पत्रियां काली करनी या दूसरोंके कानोंमें अपनी पीड़ाका डालना बहुत लाभकारी नहीं। अन्तर्यामी परमात्मा पहिले ही हमें लड़खड़ाते हुओंको जानते हैं। हमारा

कहना केवल अपने अन्दर अनुभव पैदा करनेकेलिये होता है कि जो मार्ग हमने पकड़ना है, वह ठीक नहीं है। उस अवस्थामें जब हम भगवानकी सहायताकेलिये पुकारते हैं, तो अवस्य शान्ति भी होती है और मार्ग भी मिलता है।

लोक०—भगवन्, इस विषयके कुच्छ मन्त्र सुनावें, ताकि हम नित्य उनका ध्यान तथा मनन किया करें। महा०—सुनिये!

(१) यचिद्धि ते विशो यथा प्रदेव वरुण व्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ ७१॥ अनुक्०१। २५।१॥

अर्थः—हे (वहण) धारण करने योग्य (देव) प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (यथा) जिस प्रकारसे (ते) तेरी (विशः) प्रजाएं [हम लोग] (यत्-चित्-हि) जो कुछ (वर्त) नियमका (द्यविद्यवि) प्रति-दिन (प्र-मिनीमसि) भंग करते हैं। [उसे आप जानते ही हैं। परन्तु आप हमारे सच्च सहायक हो। इसलिये,] ॥२॥

(२) मा नो वधाय हत्तवे जिहीडानस्य रिषः। मा हणानस्य मन्यवे ॥ ७२॥ ०—२॥

अर्थः—[भगवन्] (नः) हमें (जिहीडानस्य) उपेक्षासे देखते हुए [अपने] (हत्नवे) घायलकरनेवाले (वधाय) घातका (मा) मत (रीरधः) निशाना बना। (हणानस्य) क्रोध करते हुए [अपने] (मन्यवे) क्रोधके [आगे] (मा) मत [डाल] ॥ २॥

भगवन् ! आपकी उपेक्षा हमारी मौत है। आप अपनी कृपा-वृत्ति बनाये रखें। कोई दिन नहीं जाता जब हमसे कोई

न कोई भूछ न हो जाती हो। आपके प्रेमकाही बस सहारा है। आप छोड़ देंगे, तो और पूछने वाला कौन है ? भगवन, आपकी रखी हुई परीक्षा बड़ी कड़ी है। इसमेंसे नाम पाकर पार निकलना अति कठिन है। पग २ पर ठोकरें खाते हैं। यह आपसे छिपा हुआ थोड़ा ही है। प्रभो ! अपनी छत्रछायामें मुझे हाथ पांव मारनेका अवसर प्रदान करें। मैं अपने कियेपर लिजत हूं। पर मुझे अन्दरसे भरोसा है कि आपकी छपासे ठीकहो जाऊंगा।

(३) यचिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठा चित्तिभिश्चक्रमा कचि-दागः । कुधीष्वस्माँ अदितेरनागान्त्र्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥ ७३ ॥ श्रक्ष्य १२ । ४॥

अर्थः—हे (यिवष्ठ) सबसे बढ़कर पदार्थोंके जोड़ तोड़में समर्थ (अग्ने) प्रकाशमान् प्रभो ! (यत्-चित्-हि) जो कुछ (किंचत्) किसी तरहसे भी (ते) तेरे [नियमोंके पालनेके संबंध में] (पुरुषमा) मजुष्योंके अन्दर (अचित्तिभिः) नाना प्रकारकी अविदाके कारण [हमने] (आगः) पाप (चक्रम) किया है। [उसके विषयमें] (अस्मान्) हमें (अदितेः) अखण्ड नियमपालनके हेतुसे (अनागान्) पापसे मुक (सु) अच्छी तरहसे (कृषि) कर। (विष्वक्) सर्व प्रकारसे (प्नांसि) अपरार्थोंको (वि- शिश्रथः) हीलाकर॥३॥

जितना पाप है, उसके मूलमें किसी न किसी प्रकारकी अविद्याही है। मोह, भ्रम, अज्ञान, रोग, द्वेष, लोभ आदि सब अविद्याकेही रूपान्तर हैं। यही निमित्त बनकर हमसे पाप करवाते हैं। जब भी हमारी उन्नति होगी, अदिति अर्थात् सृष्टि की रचनाके अखण्डनीय व्रतोंको समझकर उन्हें धारण करनेसे ही होगी। प्यारो, भगवान्से प्रार्थना करो कि वह हमें पूर्व कही हुई अविद्यासे पृथक् करके अदितिसे जोड़ देवे, ताकि हमोर सब कष्ट और सन्ताप दूर हों।

(४) महश्चिदम एनसो अभीक ऊर्वादेवानाम्रुत मर्त्या-नाम् । मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ॥ ७४ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप भगवन् ! (देवानां) देवताओं (उत) और (मत्यीनां) मजुष्योंके (अभीके) साथ [रहते हुए] (ते) तेरे (सखायः) मित्र [बने हुए हम] (सदं-इत्) कभी भी (महः-चित्) किसी बड़े (ऊर्वात्) फैळे हुए (एनसः) पापसे (मा) मत (रिषाम) मारे जावें। [सदाही] (तोकाय) पुत्रीं [और] (तनयाय) पौत्रोंके प्रति (शं) उपद्रवोंसे शान्ति और (योः) सुखों की प्राप्ति (यच्छ) प्रदानकर ॥ ४॥

दो प्रकारके पापका वर्णन किया है। एक वह पाप होता है, जिसके द्वारा हम देवताओं की अवझा करते हैं। दूसरा वह होता है, जिसके द्वारा मनुष्यों की अवझा करते हैं। कभी पाप इतना सूक्ष्म होता है। कि देवताही पहचान सकते हैं और कभी हम इतना मर्यादाका उल्लंघनकर बैठते हैं कि साधारण जनता भी हमसे घृणा करने लग जाती है। इस विस्तृत, सूदम और स्थूल पापसे प्रभुकी रूपा और सहायता और सच्चे साधनों का सहारा ही हमें छुड़ा सकता है। मानसिक उपद्रवां से छूटकर, बलके

बढ़ानेवाले गुणोंको घारण करें, ताकि हमारे पुत्र और पोते भी एक दूसरेके पींछे अच्छे, घर्मात्मा बनते हुए चले जावें ॥

(५) त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा गात्रे गात्रे निष-सत्था नृचक्षाः । यत्ते प्रमिनाम त्रतानि स नो मृड सुपखा देव वस्यः ॥ ७५ ॥ ऋक्०८ । ४६ । ६॥

अर्थ:—हे (सोम) [सर्व संसारको ] घेरणा करनेवाले, भगवन्! (त्वं) आप (हि) क्योंकि (नः) हमारे (तन्वः) हारीर [तथा सर्वस्व] के (गोपाः) रक्षा करनेवाले हैं [और] (नृचक्षाः) सब नर, नारीको देखतेहुए (गात्रे गात्रे) अंगः अंगमें (नि-सस्तथ) मौजूद रहते हैं। [इस लिये] (यत्) जब [कभी] (ते) तेरे (व्रतानि) नियमोंका (प्र-मिनाम) भंग करें, [तो] हे (देव) प्रकाशस्वरूप (सु-सखा) अच्छे मित्र [बनकर] (वस्यः) कल्याण करनेवाले [होकर] (सः) आप (नः) हमपर (मृड) कृपा करें ॥ ५॥

मगवानकी आंख प्रत्येक प्राणीके कार्योंको नित्य देखती रहती है। सबके अन्दर अन्तर्यामी होकर परमेश्वर मौजूद है। जीवनके सौ उतार, चढ़ाव आते हैं। कई वार हमसे बड़े बड़े अपराध होजाते हैं। हमारे अपने साथी साथ छोड़ देते हैं। सम्बन्धी सम्बन्ध तोड़ देते हैं। इष्ट, मित्र मुँह मोड़ छेते हैं। प्यारो, उस समय भी भगवानकी छपा-दृष्टि फिर हमारा उद्धार करती है। अन्दर छजा पैदा होती है। पुरुषार्थी साधकोंकोछिये यह एक प्रबल प्रेरणाका काम देती है। वे

सन्तापकी भट्टीसे कुन्दन होकर निकलते हैं। यही प्रभुका मित्र बनकर सहायता करना है।

(६) यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेभिद्रोहं मनुष्या-श्ररन्ति । अचित्त्या चेत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मा-देनसो देव रीरिषः ॥ ७६॥ श्रथर्व०६ । ४१ । ३॥

अर्थः—हे (वरुण) वरने योग्य प्रभो ! (दैव्ये) दिव्य जीवनवाळे (जने) छोगोंके प्रति (यत्) जो (किंच) कुच्छ (इदं) यह [पाप-कर्म] (अभि-द्रोहं) घोखा [आदि] (मनुष्याः) [हम और दूसरे] मनुष्य (चरन्ति) करते हैं। [और] (चेत्) यदि (अचित्या) अज्ञानसे (तव) तेरे (धर्म) धर्मका (युयोपिम) हम उल्लंघन करते हैं, (तस्मात्) उस (पनसः) पापसे हे (देव) प्रकाशस्वरूप, प्रभो! (नः) हमें (मा) मत (रीरिषः) हानि पहुंचा॥६॥

प्यारो, जो प्रभुके प्यारे, सबके दुःख दूर करनेवाले, परोपकारी, सज्जन महात्मा हैं, उनको भी लोग घोखा देनेसे नहीं रहते। वे लोग वस्तुतः बढ़े खोट भागींवाल हैं। वे सज्जन तो सच्चे देवता होते हैं। उनसे तो जीवन सुधारनेकेलिये प्रकाश लाम करना ही हमारा कर्त्तव्य होना चाहिये। प्रभुकी कृपासे हम इस अनर्थसे बचे रहें। इसके साथ ही भगवानके चलाये हुए नियमोंका ठीक ठीक पालन करते रहें। इसीमें हमारा कल्याण है। वे नियम बड़े कड़े और अटल हैं। वे किसी भी व्यक्तिकेलिये ढीले नहीं होसकते। यह ठीक है कि हम प्रायः अञ्चानसे ही यह अपराध करते हैं। पर अञ्चान भी

तो दूर किया जासकता है। इस लिये वेद वार वार प्रभुसे प्रकाश प्राप्त करनेका इशारा करता है। हमारे सन्तापके मूलमें मोह और भ्रम ही मुख्य हेतु है। सत्संगसे यह दूर होसकता है। वेद भगवान इसी बातको खोलकर फिर कहता है।

(७) मा नो हासिषुर्ऋषयो दैन्या ये तन्ता ये नस्त-न्वस्तन्जाः । अमर्त्या मर्त्या आभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥ ७७ ॥ अथर्व० ६। ४१।३॥

अर्थः—(ये) जो (दैव्याः) [विद्याके प्रकाशसे ] प्रकाशमान [हमारे ] (तन्पाः) शरीरोंके रक्षक (नः) हमारे (तन्वः) शरीरके (तन्जाः) [शरीरसे पैदा होनेवाले पुत्रादिके समान ] भाग हैं [पेसे ] (ऋषयः) ऋषि (नः) हमें (मा) मत (हासिषुः) छोड़ें। हे (अमर्त्याः) मृत्यु [के भयसे ] रहित [विद्वानो ] (मर्त्यान्) मरनेके स्वभाववाले (नः) हम लोगोंके (अधि) पास (सचध्वं) रहो। (नः) हमें (जीवसे) जीनेकेलिये (प्रतरं) दीर्घ (आयुः) आयु (धत्त ) धारण कराओ ॥ ७॥

प्यारों, आपने अच्छी तरहसे वेदके आशयको समझा ? ऋषि हमोरे मध्यसेही निकलते हैं। दो भाई एकही घरमें पैदा होते हैं। अपने अच्छे कमों, गुणों और वृत्तियोंसे एक ऋषि और देवता बनजाता है और दूसरा राक्षस होजाता है। हमारा कल्याण इस बातमें है कि हमारे आसपास ऋषियोंका निवास हो। हमें अपनेही भाइयोंको मृत्युके भयसे ऊपर उठकर नित्य सन्तेष और शान्तिसे युक्त होकर रहते हुए देखकर उत्साहहों कि

हमभी उनके पाद-चिह्नोंपर चलकर उन्नति करें। जीवित जाग्रत जातियां अपने महापुरुषोंके जीवनसे इसी तरह लाभ उठाती हैं। हमेंभी चाहिये कि महाराज रामचन्द्र और भगवान कृष्णचन्द्रसे अपना घनिष्ठ संबंध जोड़ें और उनसे कुच्छ सीखें। उनकी वीरता, घीरता और पवित्रताको अपने जीवनका आधार बनावें। इन्हीं उपायोंसे यह महापुरुष मृत्युको जीतकर नित्य आनन्दका सेवन करते थे। इन्हेंही हमेंभी वर्तना चाहिये। जो होचुका, सो होचुका। अब चित्तका भार प्रभुके चरणोंमें और महापुरुषोंकी सेवामें बैठकर हलकाकर देना चाहिये और उन्नतिके मार्गपर चल पड़ना चाहिये। सज्जनो, पश्चाचापका भाव बैठकर रोतेही रहना नहीं। इसके साथ पुनरुद्धार अर्थात् फिर अन्धेरे गढ़ेसे निकलकर, प्रकाशमें विचरनाभी है। इसीका नाम जीवन है। जहां यह मौजूद है, वहां मृत्युका कोई भय नहीं सता सकता।

(८) यद् देवा देवहेडनं देवासश्चन्नमा वयम्। आदित्या-स्तसान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुश्चत ॥ ७८ ॥ श्रथर्व०६। ११४।१॥

अर्थः — हे (देवाः) प्रकाशमान (देवासः) देवताओ, (यत्) जो (देव-हेडनं) देवताओंकी अवश्वा (वयं) हमने (चरुम) की है। हे (आदित्याः) अटल नियमवालो !(य्यं) तुम (ऋतस्य) सञ्चाईकी (ऋतेन) सञ्चाई [परमसत्य] के द्वारा (तस्मात्) उस [पापकी पकड़ ] से (नः) हमें (मुञ्जत) लुड़ाओं॥ ८॥

उलटे कार्यका मनपर बुरा प्रभाव कब बन्द होगा ? जब हम उससे दुगना सीधा कार्य कर दें। परम सत्य प्रभुका नाम है। जब सक्चे विद्वान् , सक्ची विद्यासे प्रकाशमान होकर, परम सत्यके रंगमें हमें रंग देंगे, तो सारा झूठ, दंभ, घोखा और कपट दूर होजावेगा। भावनाकी दृढ़तासे इधर रुचि बढ़ती जावेगी।

(९) ऋतस्वर्तेनादित्या यजत्रा ग्रंचतेह नः । यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम ॥ ७९ ॥ ०—२ ॥

अर्थः—हे (आदित्याः) अटल नियमोंके पालन करने वालो (यज्ञवाहसः) यज्ञादि पवित्र कमोंको पूर्ण करानेवालो (यज्ञत्राः) पूजनीय [देवताओ], (यद्) जब (यज्ञं) यज्ञको (शिक्षन्तः) सिद्ध करनेकी इच्छा करते हुए [हम ] (न, उपशे-किम) ठीक कर नहीं सके, [तो आप] (ऋतस्य) सत्यके (ऋतेन) सत्यद्वारा (इह) इस [संकटकी अवस्थामें] (नः) हमें (मुंचत) [अपराधसें] छुड़ावें॥ ९॥

जीवन एक यश है। हमारे मनमें यही भाव रहना चाहिये। जहांतक होसके परोपकार करते रहें। परन्तु इस मार्गपर सत्पुरुषोंका सहाराही हमें ठीक २ चला सकता है। इच्छा होते हुएभी मानसिक दुर्बलताके कारण हम पूरे नहीं उतर सकते। कई अनुचित कर्मकर बैठते हैं। परन्तु जो कुच्छभीहो, मनमें भावना बनी रहनी चाहिये। विद्वानोंका सत्संग बड़ा उपकारी है, उसीद्वारा मनको धो डालना चाहिये।

(१०) यद् विद्वांसो यद्विद्वांस एनांसि चकुमो वयम्।
यूयं नस्तस्मान्मुश्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥ ८० ॥
श्रथर्व० ६ । ११४ । १ ॥

अर्थ:—हे (विश्वेदेवाः) सकल देवताओ (सजोषसः) परस्पर प्रीतिसे रहनेवालो ! (विद्वांसः) जानते हुए [या] (अविद्वांसः) न जानतेहुए (यद्) जब (वयं) हम (एनांसि) पाप (चकृम) कर बैठें (यूयं) आप (नः) हमें (तस्मात्) उससे (मुंचत) छुड़ावें ॥ १०॥

पाप दो प्रकारसे होता है। अज्ञान तो कारण होता ही है, पर जानते हुएमी पापसे बचना कठिन होता है। वेद विद्वानोंका छक्षण यह बतलाता है कि वे मिलकर प्रेमसे रहनेवाले हों। आज यह बात दिखाई नहीं देती। इसीलिये लोगोंपर प्रभाव भी कम पड़ता है। विद्वानोंका यह कर्चव्य है कि वे लोगोंके सामने आदर्श बनकर रहें, ताकि सबको प्रकाश मिलता और जीवनका मार्ग दिखाई देता रहे।

(११) यदि जाग्रद् यदि खपन्नेन एनस्योऽकरम्। भूतं मा तसाद् भव्यं च द्रुपदादिव ग्रंचताम्।।८१॥ ०—२॥

अर्थः—(यदि)(जाप्रत्)जागतेद्वुष (यदि)(स्त्रपन्) सोतेद्वुष (पनस्यः) पापमें फंसाद्वुआ [में] (पनः) पाप (अकरं)कर बैठा हूं।(मा) मुझे (तस्मात्) उससे (भूतं) भूत (च) और (भव्यं) भविष्यत् (मुंचतां) छोड़ें (इव) जैसे [किसी पशुको](द्रुपदात्) खूण्टेसे [छोड़ा जाता है]॥११॥

जब पापके संस्कार बहुत बढ़ जाते और पक्के होजाते हैं, तो सोये २ भी संकल्प, विकल्प करनेवाला मन उधे इ-बुनमें लगा ही रहता है। जो मनुष्य जागताहुआ अच्छे विचार नहीं करता, वह सोयाहुआ भी कभी अपने स्वभावसे उलटा नहीं जासकता । इस अवस्थामें पापके खूंटेके साथ हम बांधेसे जाते हैं। दापं ओर बढ़ें तब भी और बाएं ओर बढ़ें तब भी वह पीछे खेंच छेता है। इस कड़ी परीक्षाके समयमें यदि अपने भूत और भविष्यत्का विचार हमारे सामने आजावे, तो हम चौंक पड़ते हैं। सज्जनों, क्या पता, कितने छाखों वर्षोंसे इसी प्रकारके चक्रमें चछते आरहे हैं। यह इसी प्रकारके कमौंका ही तो परिणाम है। तो क्या फिर भी ऐसे ही करते रहनेसे हमारा भविष्य ऐसा ही खुराब न होगा? अवस्य होगा और शायद इससे अधिक खुराब हो। पीछेके जीवनकी पड़-ताछ करनेसे शोक और आगेका विचार करनेसे भय पैदा पैदा होकर हमें कभी कभी ठीक मार्गपर डाछ देते हैं। सोया हुआ आत्मा जाग पड़ता है। अपनी प्रतिष्ठाका विचार पैदा होता है। दुर्वछता दूर होकर मानसिक सरोवर प्रबछ विचार-तरंगोंसे उछ्छने छगता है। यही शुद्धि है। यही पुनरुद्धार है।

## चतुर्थ खगड

## जीवनका आदर्श।

सत्य०—महाराज, आज कौनसे विषयपर वेद भगवान्का उपदेश सुनाएंगे ?

महा० — बेटा; जिस मार्गका तीन चार दिनसे वर्णन होरहा है, उसीके सम्बन्धमें वैदिक आदर्शको संगतके सामने रखूंगा। समय होगया है; तुम्हारा मित्र-मण्डल आता ही होगा। सत्य०—आइप, वस्तुस्वरूपजी, आपकी प्रतीक्षा ही होरही थी। छोकेशजी, नमस्ते।

अन्त०—भगवन्, नमस्ते। मैं कुच्छ दिनोंकेलिये बाहिर एक आवश्यक कामपर चला गया था। आपके वचनोंको सुन सुनकर मैं अपने अन्दर बड़ा परिवर्त्तनसा पाता हूं। वहां भी आपके चरणोंमें ही मेरा चित्त लगा रहा।

उप०—और, मेरा तो, महाराज, सब उपराम उड़ गया है। क्रियात्मक जीवनमें आनन्द अनुभव करने लगा हूं।

महा०—महाशयो, जितना अधिक वैदिक जीवन-नीतिको समझोगे और अपनाओगे; उतना ही अधिक तुम्हारे अन्दर उछ्छास, उत्साह; बळ और पराक्रम पैदा होगा । और जितने अधिक यह दिव्य गुण तुम्हारे अन्दर निवास करेंगे, उतना अधिक जगत्में तुम्हारा प्रकाश होगा । सुनिए, वेद किस प्रकार इस सम्पत्तिको प्राप्त करने की प्रेरणा करता है ।

(१) मनसः काममाक्तिं वाचः सत्यमशीय।पश्चनाक् रूपमन्नस्य रसो यशः श्री श्रयतां माये स्वाहा ॥८२॥ यजु० ३९। ४॥

अर्थः—[मैं] (मनसः) मनकी (कामं) कामना (आकृतिं) उत्साह (वाचः) वाणीकी (सत्यं) सचाईको (अशीय) प्राप्त करूं। (पशुनां) पशुओंका (रूपं) [सुन्दर] रूप (अशस्य) अश्वका (रसः) रस (यशः) यश (श्रीः) लक्ष्मी (मिये) मेरे हां (श्रयतां) निवास करे। (स्वाहा) यह मेरी भावना सत्यमय हो ॥१॥ प्यारो, उत्साहके विना मानसिक कामनाएं कभी पूरी नहीं हुआ करतीं। लपोड़शंख बनने से मनुष्य अपने आपको ही घोखें में रखता है। वाणी में सत्यकी प्रतिष्ठा होने से ही लोक में मनुष्यकी प्रतिष्ठा होती है। आर्य-जीवन शारी रिक और मानसिक, दोनों प्रकारकी उन्नाति युक्त होना चाहिये। अतः जहां सत्य और उत्साहको घारण करने का उपदेश होता है, वहां साथ ही, पशुओं और घन, घान्यकी भी आवश्यकता बतायी गयी है। अन्तमें 'स्वाहा'का शब्द प्रेरणा करता है कि जो कह रहे हो, उसे पूरा करने की चिन्ता करो। शब्द मात्रसे वायुको घक्के लगाने से ही जीवन सफल नहीं हुआ करता। कार्य करो, उद्यमी बनो और लक्ष्यको प्राप्त होवो।

वस्तु०—महाराज, हमारा लक्ष्य क्या है ?

महा०—बेटा, एक राज्यमें देवता बनना हमारा छक्ष्य है। भौतिक जगतमें प्रकाश, बल, गित आदि गुणोंसे युक्त होनेकेकारण सूर्य, चन्द्र, अग्नि, जलादिको देवता कहते हैं \*। इन्हीं गुणोंको धारण करनेसे मनुष्य भी देवता-पदको प्राप्त कर सकता है। जन्मसे हम मर्ल्य हैं, कर्मसे हम अमर देवता बन सकते हैं। वेदका आश्चय स्पष्ट है। सुनो,

(२) द्वे सृती अशृणवं पितृणामहं देवतानाम्रत मत्यीनाम् । ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥ ८३॥ यजु०१९। ४७।

<sup>\*</sup> देखो, वेद-सन्देश. १म भाग, पृष्ठ, १४८, २३४—२३७ । देवयज्ञ-प्रदीपिका, पृष्ठ १३७—१३९।

अर्थ:—(अहं) मैंने (पितृणां) ज्ञानी वृद्धोंसे (देवानां) देवताओं (उत ) और (मर्त्यानां) मर्त्योंके (दे ) दो [अलग अलग] (सती) मार्गों [का वर्णन] (अश्टणवं) सुना है। (इदं) यह (विश्वं) सारा (एजत्) चलता फिरता [संसार] (यत्) जो (पितरं) पिता [=युलोक] (च) और (मातरं) माता [=पृथिवी] के (अन्तरा) बीचमें [है], (ताभ्यां) उन [मार्गों] से (सम्-एति) होकर जाता है॥२॥

कालका चक्र बड़े प्रबल वेगसे चल रहा है। वह एक क्षण भर भी किसीकेलिये ठहर नहीं सकता। जिसे जो कुच्छ करना है, स्वयं समयको ठीक ठीक समझकर करते जाना चाहिये। दो ही मार्ग हैं और दोनों प्रत्येक साधकके सामने खुले पड़े हैं। यह उसकी बुद्धि, शिक्षा, धारणा और शक्तिकी परीक्षाका एक चिह्न होगा कि वह अमृतके द्वारको खोलता है, या कि जनम, मरणके चक्रमें ही पड़ा बिल-बिलाता है।

(३) मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीनेः सन्त्वोषधीः॥८४॥ यजु०१३।२७॥

अर्थः—(ऋतायते) ऋतको घारण करनेवालेकेलिये (वाताः) पवन [और] (सिन्धवः) निदयां (मधु) मीठे बनकर (क्षरन्ति) बहते हैं। (नः) हमारेलिये (ओषधीः) ओषियां (मार्घ्वाः) मिठाससे युक्त (सन्तु) हो॥३॥

परमात्माके अटल, सच्चे नियमोंका नाम ऋत है। जो मनुष्य प्रभुकी सुन्दर रचनाके इस रहस्यको समझकर सत्या- चरणसे युक्त होजाता है, उसके लिये संसार कड़वा नहीं रहता। जहां जाता है, उसे मीठा ही मीठा प्रतीत होता है। जल क्या और वायु क्या, सूर्य क्या और चन्द्र क्या, सर्वत्र उसके लिये मिठासका सामान तथ्यार है। प्यारो, वेद हमें उपदेश करता है कि हमारा जीवन भी इसी प्रकारकी दिव्य सम्पत्तिसे युक्त हो, ताकि हम वृथा जगत्को दोषी न ठहराते हुए, चारों ओर आनन्दको ही अनुभव कर सकें। यही दिव्य जीवनको धारण करने तथा प्रभु-प्रसादको पानेका मार्ग है।

(४) आयुर्यज्ञेन करपतां प्राणो यज्ञेन करपतां चक्षु-यज्ञेन करपता श्रोतं यज्ञेन करपतां पृष्ठं यज्ञेन करपताम्। यज्ञो यज्ञेन करपतां प्रजापतेः प्रजा अभूम स्वर्देवा अग-नमामृता अभूम ॥ ८५॥ यज्ञ०९। २१॥

अर्थः—(आयुः) जीवन (यक्षेन) यक्षकेद्वारा (कल्पतां) सामर्थ्यसे युक्त हो। (प्राणः) प्राण (चक्षुः) आंख (श्रोत्रं) कान (पृष्ठं) पीठ [और] (यक्षः) यक्ष (यक्षेन) यक्षकेद्वारा (कल्पतां) सामर्थ्यवान हों। [हम] (प्रजापतेः) परमात्माकी (प्रजाः) प्रजापं (अभूम) बनें, (देवाः) हे देवताओ, (स्वः) उत्तम गतिको (अगन्म) प्राप्त हों, (अमृताः) अमर (अभूम) होजावें॥ ४॥

माया०—महाराज, नमस्ते।
महा०—नमस्ते। आज कहां रह गये थे?
माया०—महाराज, क्या बताऊं? मेरे एक मित्र अच्छे

सम्पत्तिशाली हैं। पर उनका सारा रुपया पैसा इधर उधर नष्ट होरहा है। मैंने चाहा कि उन्हें आपके चरणोंमें बैठकर वेदामृतके पान करनेका सौभाग्य प्राप्त हो।

वस्तु०-क्या वही मणिराम सेठ?

माया०—हां । उन्हींके पाससे निरादत होकर आरहा हूं। सत्य०—निरादर ! यह कैसे ?

महा०—बेटा, इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है ? सेठ अपने धनके मदमें बेचारे मायारामको मूर्ख, भिखमंगा समझता होगा। उसे इस अवस्थामें उपदेश करना ठीक न था।

माया०—जी हां। वह तो अपने समान किसीको बुद्धि-मान समझता ही नहीं। हा!धनाट्योंकी भी विचित्र ही दशा है।

महा०—मायारामजी, आपने अपना कर्त्तव्य समझकर इस कार्यको किया। आपने उसकी भलाईकेलिये सब कुच्छ किया। इतना ही विचार हमारे सामने रहना चाहिये। फलकी विशेष इच्छा मत करो। बस, फिर कभी असन्तोष न होगा। अभी आपके आनेसे पहिले में वेद भगवान्से यञ्चमय जीवनके विषयमें सन्देश सुना रहा था। कर्त्तव्य-बुद्धिसे युक्तहोकर कर्म करते चले जाना ही इस जीवनका सच्चा बल है। इसीसे शरीर पुष्ट, और अन्तःकरण सन्तुष्ट होता है। यञ्चका अभ्यास ही हमार यञ्चको पूर्ण बनाता है। इस पूर्णताका अभिप्राय यह है कि स्वार्थ और परार्थमें भेदका लेश भी न रहे। व्यांक समिष्टिमें पूर्णतया लीन होजावे। आत्महित विश्वहितमें कोई अन्तर न

रहे। हम प्रभुकी प्रजा हैं। हमें किसी धनाड्यका द्वार खट-खटानेकी आवश्यकता नहीं। वह सबका स्वामी है। हम सब उसके पुत्र और पुत्रियां हैं। इसिटिय हमारा परस्पर प्रेम होना चाहिये। ईच्या और द्वेष किसके साथ करें १ कोई पराया तो है नहीं। इसी अवस्थाको प्राप्त होना उत्तम गति है। यही सचा सुख है। इसको पाकर फिर मृत्युका भय नहीं रहता। भय दूसरेसे होता है। जब संसारके एक एक प्राणीसे मेरे चित्तकी तार मिटकर भगवद्गक्तिको आलाप रही हो, तो भय किससे और शोक कैसा। प्यारो, वहां पहुंचकर आनन्द ही आनन्द है। यही हमारे जीवनका आदर्श है। इसे कभी दृष्टिसे दूर न होने दो।

(५) मा भेमी संविक्था अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकतीय त्वा ॥ ८६॥

यजु०१।२३॥

अर्थः—(मा) मत (भेः) भय कर, (मा) मत (सं-विक्थाः) घवरा।(यहः) यह्न (अतमेरः) ग्लानिका न करने वाला [हो]।(यजमानस्य) यजमानकी (प्रजा)(अतमेरः) ग्लानिरहित (भूयात्) हो, (त्वा) तुझ [यह्न] को (त्रिताय) शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भाव, (द्विताय) वैयक्तिक और सामुदायिक [तथा] (एकताय) परमानन्दकी प्राप्तिके-लिये [धारण करता हूं]॥५॥

सज्जनो, इस मन्त्रमें यज्ञका पूरा आशय प्रकट होरही है। भय और घबराहटका मूल-नाश करके, घृणा, ग्लानि, आलस्य और प्रमादका त्याग करके जीवनके यहमें पग घरो। तुम्हारी प्रजा तुम्हारा अनुकरण करतीहुई वैसी ही बनेगी। प्रत्येक मनुष्यका जीवन शरीर, मन तथा आत्माकी दृष्टिसे तीन प्रकारका, ब्यक्ति और समाजकी दृष्टिसे दो प्रकारका और प्रमालक्ष्य, प्रमात्माके साथ एकता स्थापित करनेकी दृष्टिसे एक प्रकारका समझा जासकता है, जीवनके इन भिन्न भिन्न विमागोंमें यही पूर्व कहीगयी यहमय-नीति ही पूर्णताको प्रदान करती है। इस लिये सत्य-धर्मका आश्रय लेकर इस प्रवित्र सजपथपर चल पड़ना चाहिये।

्र सत्य०—महाराज, आज तो यजुर्वेदहीसे आप सुना रह हैं।

महा०—बेटा, वेदका अथाह सागर है। जहां डुबकी लगा ली, वहींसे बहुमूल्य रह्मोंकी प्राप्ति होजाती है। वेद गुड़ या मिस्रोंके पिण्डके समान है। जहांसे चक्खो, मिठास ही मिठास है।

उप०-क्या हमें भी कभी ऐसी शक्ति प्राप्त होगी ?

महा०—प्यारे भाई, उपराम झोड़दे। उत्साहको धारण करले। स्वाध्यायका श्रभ्यास कर। मनको वेदकी सेवाम लगादे। फिरजो कुच्छ व चाहेगा, वह चिन्तामणि तुमे देती चली जावेगी।

वस्तु०—भगवन, वेद भगवानका पूर्ण श्रनुवाद भी मिलता है ?

माया०—ग्रजी, कहां ? मैंने सारा टटोल मारा। काशी तक हो ग्राया। महा०—सत्य है। यही अवस्था है। सहस्रों वर्षों के अन्धकारके पीछे महाराज द्यानन्दस्वामीने आजसे साठ वर्ष पूर्व-सर्ज्यका प्रकाश लोगोंको दिखाया। अभी एक मास तक हरद्वारके तीर्थ पर कुम्भ-स्नानके लिये लाखों नर, नारी इकट्ठे होंगे। बारह २ वर्षकी पीछे यह पर्व लगता है। १६२४ के कुम्भपर पाखगुडखगुडनी पताका खड़ी करके महाराजने सर्व प्रकारके अन्धकार, अन्याय और अत्याचारके विरुद्ध हल्ला बोल दिया था। तबसे फिर वेद भगवानका नाम कानोंमें पड़ने लगा है। उन्होंने वेदका भाष्यभी रचा। पर पूरा न कर सके। उनके पीछे आर्य समाजके विद्वानोंने कुच्छ थोड़ा बहुत यह किया है। परन्तु यह कार्य अभी न हुएके समान है।

भ्रन्त०—महाराज, भ्रार्य समाज बड़ा शक्तिशाली समुदाय है। यह काम भ्रभी तक श्रधुराही क्यों कोड़ रखा है।

महा०—पुरानी विद्याका पुनर्जीवित करनेकेलिये तपस्वी, त्यागी, श्रप्रमादी, योग्य जीवनोंकी श्रावश्यकता है। पेसे लोग श्रभी इधर नहीं लगे। साधारण प्रजा वेदका नाम ले २ कर काम चलाती है। पढ़े लिखे ऊपर २ तैरते हैं। जब योग्य युवकोंके मनमें उल्लास होगा, धनियोंका धन-प्रवाह इधर बहेगा, तब यह कार्य होगा। पर होगा। श्रवश्य, क्योंकि महात्यागी, धर्मधुरंधर, प्रभुवर द्यानन्दका धक्का लगा हुआ निष्फल कभी न जाएगा। जितना इस श्रोर पुरुषार्थ करोगे, उतना ही श्रधिक सुख पाश्रोगे, सुनो, श्रब ऋग्वेदसे इसी प्रकरणमें कुच्छ सुनाता हूं।

(६) सम्यक् सम्यश्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्माविध

वेना अवीविपन् । मधोर्घाराभिर्जनयन्तो अर्कमित् प्रिया-मिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥ ८७ ॥ ऋक्० ६ । ७३ । २॥

श्रर्थः—(महिषाः) महापुरुष (सम्यक्) श्रच्छे प्रकार (सम्यञ्चः) मिले हुए (श्रहेषत) उन्नति करते हैं: (वेनाः) विद्वान लोग (सिन्धोः) समुद्रकी (ऊर्मों-श्रिधि) लहरके ऊपर (श्रवीविपन्) बीज बो चुके हैं। (मधोः) मधुकी (धाराभिः) धाराश्रोंसे (श्रकें) स्तुतिको (जनयन्तः) प्रकट करते हुए (इत्) निश्चय करके [वे] (इन्द्रस्य) इन्द्रके (वियां) प्यारे (तन्वं) विस्तृत स्वरूपको (श्रवीवृधन्) फैला चुके हैं॥ई॥

विद्या बड़ी अच्छी है। यदि इसके साथ परस्पर मिल कर काम करने वाला मधुर स्वभावभी प्राप्तहों जावे, तो समुद्रकी थप २ करती हुई लहरोंके ऊपर भी यश और कीर्त्तिकी खेतीकी जा सकती है। संसार भी तो महासागर है। इसमें सदाही ज्वारभाटे आते रहते हैं। कितनी गड़ बड़ और अशान्ति रहती है। परन्तु सच्चे महापुरुष इन दोनों गुणोंसे युक्त होकर, अशान्तिमें शान्त और चंचलतामें निश्चल रहते और मानव इतिहासके पत्रोंपर अपना नाम अमेट कर जाते हैं।

(७) पवित्रवन्तः परिवाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि-रक्षति त्रतम् । महः समुद्रं वरुणस्तिरोदघे धीरा इच्छेकु-र्घरुणेष्वारभम् ॥८८॥ ०—३॥

ग्रर्थः—[ उक्त महापुरुष ] ( पवित्रवन्तः ) पवित्रतासे युक्त होकर ( वाचं ) वाणीको ( परि-भ्रासते ) धारण करते हैं, (एषां) इनके (वतं) वतकी (प्रतः) अनादि (पिता) भगवान [स्वयं] (अभि-रत्नति) अच्छी तरहसे रत्ना करता है। (वस्ताः) सर्वव्यापक प्रभु (महः) महान (समुद्रं) सागरको (तिरः-द्धे) समेटकर धारण करता है, (धीराः) धीरपुरुष (इत) ही (धरुणेषु) धारण करने वालोंके मध्यमें (ब्रार्स) ब्रारंभ करनेकी (शेकुः) शक्ति रखते हैं॥ ७॥

वे जो कुच्छ कहते हैं, शुद्ध भावसे और पूरा करने के लिये कहते हैं। चाहे कितनाही कठिन कार्य हो, वे नहीं घबराते। स्वयं भगवान उनकी लाज रखता है। वस्तुतः वह आपही सबको धारण कर रहा है। उसके शासनमें सूर्यादि सब जतका पालन करते हुएही देवता बने हुए हैं, इसलिये धीर पुरुष एके जती बनकरही स्थायी कार्योंको हाथ लगा सकते हैं। आरंभ कियेहुए कार्यको पूरा करने सेही असली बड़ाईका प्रकाश होता है॥ ७॥

(८) प्रतान्मानाद्भ्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रम-सस्य मन्तवः । अपानचासो विधरा अहासत ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृतः ॥ ८९ ॥

श्रयः—(ये) जो (श्रोक-यन्त्रासः) कीर्ति-नियमी (रमसस्य) वेगका (मन्तवः) मनन करनेवाले (प्रज्ञात ) पुराने (मानात) मापसे (श्रिध-ध्रा-सम्-श्रस्थरन) श्रिधिक श्रागे बढ़ जाते हैं [वेही महापुरुष होते हैं ]। (श्रनत्तासः) श्रन्धे [श्रौर](बिधराः) बहरे (श्रप) दूर (श्रहासत) छोड़कर चलेजाते हैं, (दु:-कृतः) दुष्कर्मी जनः (श्रुतस्य) ध्रमेके (पन्थां) मार्गको (न) नहीं (तरन्ति) तर सकते ॥ ६॥

महापुरुषोंका जीवन संकुचित रेखाओं के अन्दर बन्द रहता हुआ, उन्नितशील तथा विस्तारात्मक होता है। कीचि और धर्मही उनका धन होता है। उनकी मानसिक शक्ति बड़े वेगसे काम करती हुई, नये २ मार्गोका उद्घाटन करती हैं। उनको प्रत्येक घटनामें रहस्य-भेदी दर्शन प्राप्त होता है। प्रत्येक शब्दमें विचित्र सन्देश भरा है। उनके आगे साधारण जनता तो अन्धी और बहरीही प्रतीत होती है। नेकी और भलाईका मार्ग कठिन है। धर्मका फल प्रायः गुप्त होता है। साधारण, पामर लोग शीघ्र घवरा उठते और कार्य्यको अपूर्णही छोड़कर भागजाते हैं। परन्तु वेदके शब्दोंमें यह निश्चित जानो कि वे सदा अपूर्ण-कामही रहते हैं, पूर्व कहे प्रकारसे जो सुकर्मी होते हैं, उन्हींकी जीवन-नौका किनारे लगती है।

(९) ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री प पवित्रा हृद्यन्तराद्धे । विद्वान् स विश्वा अवनाभिपश्यत्यवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥ ९०॥ ०—६॥

श्रर्थः—(श्रतस्य) सचाईका (गोपाः) रखवाला (सु-क्रतुः) श्रेष्ठ कर्मोका स्वामी [जगदीश्वर] (न दभाय) धोखेमें नहीं श्राता, (सः) वह (त्री) तीन (पवित्रा) पवित्रताश्रोंको (हृदि-श्रन्तः) हृदयके श्रन्दर (श्रा-द्धे) धारण करता है। (सः) वह (विश्वा) सारे (श्रुवना) लोकोंको (श्रमि-पश्यित) श्रच्छी तरह देखता है, (कर्ते) कर्ममें (श्रवतान) वतहीन [श्रत एव] (श्रज्जुष्टान] श्रीतिके श्रपात्रोंको (श्रव विध्यित) जड़से उखाड़ फैकता है॥ ६॥

प्यारो, सारी नेकीका आधार परम पिता, परमातमा है। वह प्रत्येक प्राणीके हृद्यमें विराजमान होता हुआ शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शुद्धिकी प्रेरणा करता है। धर्मातमा, सज्जन उस प्रेरणाका मान करते और उससे उन्नत होते हैं। कुपुरुष उस हृद्यकी ध्वनिको द्वाकर मस्त रहना चाहते हैं। परन्तु वे मूर्ख हैं। भगवानकी आंख प्रत्येक घटनाको भलीभान्ति देख रही है। जो अधर्मके ऊपर अपना जीवन-मन्दिर बनाते हैं, उन्हें पीछे पछ्ताना पड़ता है। प्यारो, सच्चे आस्तिक बनो। प्रभुकी मित्रता और प्रीतिकेलिये अपने आपको पात्र बनाओ। सदा सत्य, धर्मसे प्यार करो। सुकर्मी बननेका पूरा यत्न करो। पुरुषार्थसे कल्याण होगा। आंख बचाकर पार नहीं हो सकते।

(१०) ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आजिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया । धीराश्चित्तत् समिनक्षन्त आश्चतात्रा कर्तमवपदात्यप्रभुः ॥ ९१ ॥

श्रथः—( ऋतस्य ) धर्मका ( तन्तुः ) सत्र ( पवित्रे ) पवित्रतामें ( वि-ततः ) विस्तारको प्राप्त होता, [ श्रौर ] ( वरु-ग्रस्य ) भगवानकी ( मायया ) मायासे ( जिह्नायाः ) जिह्नाकी ( श्रप्रे ) नोकपर ( श्रा-ततः ) स्थापित होता है । ( धीराः ) धीर पुरुष ( चित् ) ही ( तत् ) वहांतक ( सम्-इनच्नन्तः ) पहुंचतेहुए ( श्राशत ) प्राप्त करते हैं, ( कर्त ) कर्ममें ( श्रप्रभुः ) श्रसमर्थ ( श्रत्र ) यहीं ( श्रव-पदाति ) श्रधोगतिको पाता है ॥ सज्जनो, परमात्माकी महती द्यासे साधक पुरुषार्थ

करताहुआ, अन्दरकी पेरणाको समस्रता है। शुद्ध, पवित्र श्रादमीकी जिह्ना सदा धर्मानुसार वचनोंको बोलतीहुई, जगत्में कल्याणका विस्तार करती है। परन्तु जो पुरुषार्थसे घबराते हैं, थ्रौर काम करनेसे डरते हैं, उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि व अपनी उन्नतिको स्वयं रोक रहे हैं। वे व्यर्थ अपने भाग्यको कोसते हैं। पवित्रोंका पवित्र, शुद्धोंका शुद्ध श्रौर बड़ोंका बड़ा, भगवान सबके हृद्यका स्वामी बनकर संसार चक्र चला रहा है। जो इस बातको समभकर, उसके बांधेहुए, ऋषियोंद्वारा माने द्वप नियमोंका पालन करते हैं, वे पवित्र होकर उत्कृष्ट गतिको प्राप्त होते हैं। उनके यहमय जीवनकी सुगन्धि चारों दिशाश्रोंकों पवित्रं करती है । उनकी उपमा निराशोंकों नयी आशा वंधाती श्रौर मुद्दीको फिरसें खड़ा कर देती है। प्यारो, कर्ममें श्रप्रभु मंत बनों । सत्त्वहीन, उत्साहंहीन, कर्महीन प्रजा कभी उठ नहीं सकती । उत्साही, पराक्रमी, कर्मवीर लोक कभी दव नहीं सकते। दंबां रहनां र्मृत्यु है। श्रंपनी टांगोंपर खड़ा होंनां जीवन है। चैतन होंकर परतन्त्र होना चैतनताका अपमान करना है।

सत्य०—सत्य है, महाराज पर यह जानतेहुएभी हम अनेक वार स्वतन्त्र नहीं होसकते। हम न चाहतेहुएभी उलटे मार्गपर चलेजाते हैं।

महा०—नहीं, बेटा, ऐसा नहीं है। इसमें विवेक करनेकी आवश्यकता है। उलटे मार्गपर चलनेका चिरकालसे स्वभावसा बनरहा है। अभी नियमपूर्वक एक २ पंग देख २ कर रखना होगा। जबतक ठीक मार्गपर चलनेका मी पूरा २ अभ्यास न हो

लेगा, तबतक थोड़ेसे प्रमादसे फिर उलटे चलने लगोगे केवल शानसे काम नहीं चलता। साधन-सम्पत्तिकीभी श्रावश्यकता है। जैसे टिकटके विना गाड़ीपर चढ़ना कठिन है, वैसेही मानसिक विकास श्रीर धर्म-मार्गका ज्ञान होते हुएभी, साधनरूपी टिकटके विना यह यात्रा नहीं होसकती।

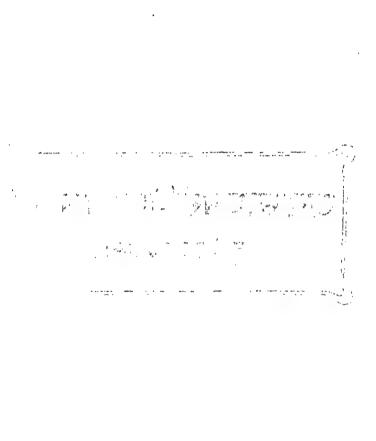
वस्तु०—वस्तुतः यही बात है।

उप०—भगवन, श्रव उन साधनोंका उपदेश कीजिएगा। महा०—हां, कलसे ऐसाही करूंगा।श्रव जाइए। श्राजके संदेशका शान्तिसे मनन करें। सबकी श्रोर मुस्करातेहुए देखकर नमस्ते, नमस्ते।



# अथ साधनसंविधानो नाम

तुरीय उच्छवासः।



### प्रथम खगड

## सत्संग और सज्जनता ।

#### -3375Kee-

महा०—ग्रन्की बात, उपरामजी, श्रव जिन साधनींका वेद भगवान उपदेश करता है, उन्हें ध्यानसे सुने श्रीर श्रपने जीवनका भाग बनावें।

उप०--श्रवश्य, महाराज !

महा०—प्यारों, मानव समाजमें दो प्रकारके लोग होते हैं। एक प्रवेक्ति मार्गपर चलनेवाले, धर्मात्मा सज्जन और दूसरे इसके विपरीत, राज्ञसी वृत्तियोंवाले लोग । यह एक सर्व-साधारण कहावत है कि खरवज़ेको देखकर खरवज़ा रंग पकड़ता है। जिस प्रकारकी संगतिमें मनुष्यको रख दिया जावे, वह शनैः २ वैसेही संस्कार प्रहण करलेता है।

वस्तु०—भगवन, क्या बुरे मनुष्योंके मध्यमें रहता हुआ मनुष्य अपने शुभ संस्कारोंके बलसे ठीक नहीं रह सकता ?

महा०—बेटा, रहसकता है ? पर कोई २ विरला और वहभी कोई बड़ाही साधन-सम्पन्न, बलवान, तपस्वी, सिद्ध महात्मा। प्रत्येक साधनकेलिये यही ग्रच्छा है कि वह इस कड़ी परीज्ञामें न बैठे। इसलिये वेद-माता ग्रपने प्यारे पुत्रोंको जहां यह समकाती है कि वे बुराईके ऊपर विजय प्राप्त करनेवाली, शक्तिको धारण करें, वहां मुख्यरूपसे सत्संगकी महिमा बतलाती है। सुनिए—

- (१) ये मूर्घानः श्वितीनामदब्धासः स्वयशसः। त्रता रक्षन्ते अद्रहः ॥९२॥
- (२) ते न आस्नो वृकाणामादित्यासो ग्रुमोचता स्तेनं बद्धमिवादिते ॥ ९३॥ अन् व्यवस्था अन्य १३-१४।

श्रर्थः—(ये) जो (चितीनां) जनताके (सूर्धानः) मस्तक [के समान], (श्रदब्धासः) धोखेमें न श्रानेवाले, (स्व-यशसः) स्वाधीन यशके स्वामी, (श्रदुहः) द्रोह-रहित [सज्जन] (व्रताः) व्रतोंकी (रज्ञन्ते) रज्ञा करनेवाले हैं॥(ते) ऐसे [श्राप] (श्रादित्यासः) हे श्रखगड नियमोंको धारण करनेवाले [महापुरुषो ], (नः) हमें (वृकाणां) भेड़ियोंके (श्रास्नः) मुंहसे (मुमोचत) बचाओ । [श्रदिते ] हे श्रखगडनीय शक्ति-देवि, [हमें ऐसे छुड़ाओ ] (इव) जैसे (बद्धं) बांधेहुए (स्तेनं) चोरको छोड़ दिया जाता है॥ १-२।

जातीय नेताओंका स्वरूप और महात्माओंका जन्नण क्या उत्तम प्रकारसे वर्णन किया गया है। जैसे शरीरमें मस्तक उत्तम ग्रंग है, वेसे वे सामाजिक शरीरके उत्तमांग हों। मस्तकका कार्य क्या है? सोच और विचार । समाज महापुरुषोंद्वारा बतायेहुए मार्गपर चलकर ही उन्नति कर सकता है। परन्तु किन नेताओंकी नीति दोष-रहित होती है? जो न धोखा देवें और न उसमें श्रावें। जो श्रात्म-विश्वासके श्राधारपर यश और कीर्त्तिके धनी बन चुके हों। जो द्रोह करनेवाले, संकटके समय श्रपनी प्रजाको पराये हाथों बेच डालनेवाले न

हों। जो सचमुच श्रादित्य हों। जिनक वतका कार राज केर न सके। ऐसे सज्जनों, श्रुरवीरोंके होतेहुए किसी बातका भय नहीं। जैसे न्यायाधीश न्याय करताहुश्रा, चोर कहकर बांधेहुए मजुष्यको मुक्त कर देता है, ऐसे ही सत्पुरुषोंके संगसे सामा-जिक भेड़ियोंके मुंहमें गयाहुश्रा पुरुष भी छूट जाता है। प्रत्येक साधकको चाहिये कि सबसे पहिले इस दिव्य सहायताको धारण करे। सज्जनोंके समीप रहकर, सज्जन बनना सीखे। उनकी श्रख्यांड शक्ति उसके श्रन्दर शनैः शनैः प्रवेश करेगी श्रौर, जब भी कोई शारीरिक, मानसिक या सामाजिक भेड़िया उसे दबोचना चाहेगा, तो यह उसकी सदा रज्ञा करेगी।

(३) मानः समस्य दृ्द्धः परिद्वेषसो अंहतिः । ऊर्मिने नावमावधीत् ॥ ९४ ॥ अन्तरू ८ । ७५ । ६ ॥

श्रथः—[हे भगवन् ] (समस्य ) सर्व प्रकारके (दृढ्यः) बुरे विचारोंवाले, [श्रौर ] (परि-द्वेषसः ) सर्वत्र द्वेष करनेवाले [पापी-जन ] की (श्रंहतिः ) हनन करनेवाली [कुवासना श्रौर कुचेष्टा ] (नः ) हमें (मा ) मत (श्रा-वधीत्) नष्ट करे (इव ) जैसे (ऊर्मिः ) लहर (नावं ) नौकाको [नष्ट कर डालती है ] ॥ ३॥

सज्जनो, हममेंसे प्रत्येकने भव-सागरमें अपनी अपनी नौकाको डाल रखा है। देखना, इसे बचाके ले चलना। भया-नक लहरोंके थपेड़ोंसे इसे परे ही रखना। भंवरमें न पड़ना। बुरे विचारों और बुरी वासनाओंकी आंधीके उठनेसे पूर्व ही किनारेपर पहुंचनेका यत्न करते रहना। प्यारो, इसका यही उपाय है कि बुरे मनुष्योंके संगको बोड़ दो। बुरा कौन है ? जो बुरे विचारोंमें ग्रसा रहता है श्रीर द्वेषपरायण होकर जिसे मिलता है, उसे भी वही विषेला डंक चुमा देता है।

(४) ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतसूचः। ति नो च्यन्तु वार्य्य देवत्रा क्षेत्रसाधसः ॥ ९५ ॥

ऋक्०३। ५। ७।।

श्रथं:—(ये) जो ( बुक्गासः ) [ गुरुश्रोंद्वारा ] तराशे हुए (ज्ञिम ) पृथिवी (श्रिध ) पर ( निमितासः ) मर्यादापर चलनेवाले (यतस्रुचः \*) ठीक रीतिसे दान करनेवाले (देवज्ञा ) देवताश्रोंके मध्यमें (स्तेत्रसाधसः ) खेतोंको साधनेवाले [हों]। (ते) वे (नः ) हमें (वार्य्य ) वरनेयोग्य पदार्थोंको ( व्यन्तु ) प्राप्त करावे॥ ४॥

सदुरुसे शिज्ञा पाकर ही मनुष्य बड़ा बनता है। जितनी अविद्या और मर्खता होती है, उसे वह काट देता है। महापुरुष मर्यादाका उल्लंघन नहीं करते। दानादिके विषयमें अपने नियमके पक्के होते हैं। अपनी विद्याके बलसे देशको हरी भरी वितियोंसे सुशोभित करते हैं। उन्हींके संगसे धारण करनेयोग्य गुणोंकी प्राप्ति होती है।

(५) हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रं वसानाः खरवो न आगुः । उन्नीयमानाः काविभिः पुरस्ताद्देवा देवाना-मिप यन्ति पाथः ॥ ९६ ॥

स्तुक् यज्ञाप्तिमें घृत डालनेके विशेष पात्रको कहते हैं । अर्थात् जिनका होम, यज्ञ, दान आदि नियमपूर्वक चलता है।

一個的 ひょう

श्रर्थः—(हंसाः) हंसोंकी (इव) तरह (श्रेणिशः) पंक्ति बांधकर (यतानाः) पुरुषार्थं करनेवाले, (श्रुकं) प्रकाशको (वसानाः) धारण करनेवाले, (स्वरवः) [सर्वहितकारी] उपदेश करनेवाले (कविभिः) विद्वानोंद्वारा (पुरस्तात्) श्रागे (उन्नीयमानाः) उन्नति करायेहुए (देवाः) विद्वान् (देवानां) विद्वानोंके (पाथः) मार्गको (श्रिप-यन्ति) प्राप्त होते हैं ॥॥

विद्वान् विद्वानोंके मार्गका श्रवलंबन करते हैं। वे परस्पर मिलकर प्रकाशका विस्तार करते हैं। जिस तरह इंस मिलकर श्राकाशमें उड़ते हैं, या मानसरोवरमें विचरते हैं, वैसे सच्चे विद्वान् संगठित होकर लोकोपकारमें लगे रहते हैं। उन्हींका सदा सत्संग करना चाहिये, तािक सबके श्रन्दर इन भावोंकी उन्नति हो। परस्पर सहयोगसे ही प्राकृतिक जगत्में सारा कार्य चलता है। सामाजिक सफलताका भी यही श्राधार है।

(६) न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् । यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तसुप गोभिरायत ॥९७॥ ऋक्०२।३०।७॥

श्र्यः—(यः) जो (मे) मेरे प्रति (पृणात्) तृप्तिको धारण करनेवाला, (ददत्) दान देनेवाला (नि-बोधात) [मेरे भावोंको ] समभनेवाला [श्रोर] (यः) जो (सुन्वन्तं) यञ्च करतेहुए (मा) मेरे पास (गोभिः) गौश्रोंके साथ (उप-श्रायत्) श्रानेवाला है, [वह] (मा) मुभे (न) मत (तमत्) तंग करे, (श्रमत्) थकावे (उत) या (तन्द्रत्) श्रालसी बनावे [श्रोर हमभी] (न) मत (वोचाम्) कहें (इति) कि (सोमं) सोमको (मा) मत (सुनोत) खींचो ॥ ई॥ प्यारे सज्जनो, ध्यानसे उपदेश और श्रोता, गुरु और शिष्य तथा नेता श्रोर प्रजाके परस्पर व्यवहार तथा प्रत्युपकारके भावको समक्तो। उपदेशकको चाहिये कि लोगोंके सेवा-भावसे तृप्त होकर, ज्ञानका दानकर उन्हेंभी तृप्त करे। उनके भावोंको समक्तर, धार्मिक कार्य्योंमें उनकी सहायता करे। गौ से तार्त्य धन, धान्यकी पूर्णता श्रोर इन्द्रियोंकी शिक्त है। सच्चा उपदेशक वही है, जो इस श्रपने कर्त्तव्यको भलीभान्ति पूर्ण करता हुश्रा, कभी प्रमाद-वश उलटे मार्गपर न स्वयं पड़ता है और न लोगोंको डालता है। इसिलये जनतामें तंगी, शिथिलता या श्रालस्य पेदा नहीं होते श्रोर पजा सदा सोम-याग श्रर्थात धर्मके कार्योमें लगी रहती है। उनमें कभी बाधक नहीं होती। एक प्रकारसे समक्तदार जनता विद्वानोंकी सहायता करती है श्रोर वे उसका कल्याण करतेहुए, सामाजिक स्वास्थ्यके निमित्त बनते हैं।

(७) कामेन मा काम आगन् हृदयाद्भृदयं परि । यद-मीपामदो मनस्तदेतूप मामिह ॥ ९८॥ अथर्व० ११।५२।४॥

श्रर्थः—(कामेन) कामके साथ (मा) मुफ्ते (कामः) काम (श्रागन्) प्राप्त हुआ है, (हृद्यात्) हृद्यसे (हृद्यं) हृद्य (पिर) मिला है। (यत्) जो (श्रमीपां) उन लोगोंका (श्रदः) वह (मनः) मन [है] (तत्) वह (मां) मेरे (इह) यहां (उप) पास (श्रा-एतु) श्रावे॥ ७॥

महाशयो, सामाजिक सज्जनताका मृल प्रेम है। प्रेम एक श्रोरसे नहीं, वरन पारस्परिक होकरही पक्का होता है। काम अर्थात् इच्छा प्रत्येक हृद्यमं उठती है। परन्तु जब लोगोंकी यह इच्छाएं एक दूसरेके अनुकूल होजाती हैं, तभी कल्याण होता है। यह बात हृद्योंके भिल जानेसे और सहानुभूतिके पैदा होनेसे होती है। इसका उपाय यह है कि प्रत्येक साधक मन्त्रके उत्तरार्धमं बतायीहुई विधिके अनुसार सदा लोगोंके मनको समझने तथा अपने समीप लानेका प्रयत्न किया करे। जब अनेक साधक ऐसा करनेवाले होजावेंगे, तो यह मानसिक प्रेम-तरंगे सर्वत्र भित्र-भावका विस्तार कर देगी।

माया०-महाराज, यह तरंगें क्या होती हैं ?

महा०—बेटा, जैसे सूर्यकी किरणें होती हैं, वैसी ही सूक्ष्म किरणें अनेक प्रकाशात्मक भौतिक पदार्थोंसे निकलती हैं। विज्ञान-वेत्ताओंने उनके विषयमें विशेष अनुभव प्राप्त किया है। मनोविद्याके शास्त्रियोंका यह सिद्धान्त है कि मनके अन्दर भी यह बल है कि केवल विचारसे ही दूसरोंको प्रभावित कर लें। इस लिये वेदका यह उपदेश है कि अपने हृद्यको प्रीतिसे युक्त करके, दूसरोंके मनोंको प्रभावित करो, ताकि वे आपके समीप आर्व। आपसका झगड़ा दूर हो। शानित प्रेमके प्रभावसे सबका जीवन मधुर होजावे।

(८) अनिमत्रं नो अधरादनिमत्रं न उत्तरात् । इन्द्रा-निमत्रं नः पश्चादनिमत्रं पुरस्कुधि ॥ ९९ ॥

अथर्व०६।४०।३॥

अर्थः—(नः) हमें (अधरात्) नीचेसे (उत्तरात्) ऊपरसे (अनमित्रं) रात्रुहीनता [प्राप्त हो]। हे (इन्द्र) (नः) हमें (पश्चात्) पीछेसे [और] (पुरः) आगेसे (अनिमत्रं) शत्रुहीन (रुधि) कर॥८॥

प्यारो, प्रतिदिन उठतेहुए और रात्रिको सोतेहुए, इस भावको हृदयमें धारण करो । अपने आपको समझाओ कि हमारा कोई रात्रु नहीं । सब दिशाओं में हमारेलिये, विश्व-व्याणी मित्रभावका विस्तार होरहा है । भगवान्से प्रार्थना करो कि सबका भला हो । बुराई किसीके साथ न हो । पेसा अभ्यास करनेसे वित्त प्रसन्न रहने लगता है और अखण्ड शान्ति रहने लगती है । अन्दर तो अन्दर रहा, बाहिर भी मुखकी कान्ति बढ़ जाती और होठोंपर मुस्क्यान रहती है ।

(९) इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्त्रमाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ १००॥ अनुक्०८।२।१८॥

अर्थः—( देवाः ) देवता ( सुन्वन्तं ) पुरुषार्थी, धर्मातमा मनुष्यको ( इच्छन्ति ) चाहते हैं, ( स्वप्नाय ) स्वप्न-शीलको ( न ) नहीं ( स्पृहयन्ति ) चाहते । ( अतन्द्राः ) आलस्य-रहित लोग ( प्र-मादं ) परमानन्दको ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

जहां सत्संगकी बड़ी महिमा है और मित्र-भावकी बड़ी आवश्यकता है, वहां यह निश्चय जानो कि सदा पुरुषार्थी बननेसे पूर्ण सफलता होगी। केवल पवित्र इच्छाओंसे कोई पवित्र नहीं बनता। बड़े बड़े आदर्शों के चिन्तनसे ही कोई बड़ा नहीं बनता। यह मनुष्यका कर्म है, जो उसे पवित्र बनाता है, बड़ा बन।ता है और जो कामना करे, वह पूरी करा देता है। वेद भगवान्का यह उपदेश है कि अपने पुरुषार्थपर ही अपने

आनन्दका आधार समझो। जो लोग सो जाते हैं, देवता उनसे अप्रसन्न होकर, जागतेहुए लोगोंको आनन्दित करनेकेलिये, उनके हां चले जाते हैं। अपने आप सहायक बनो, तब भगवान भी सहायता करेगा, गुरु भी सहायता करेगा और सारे देवता भी सहायता करेंगे। मनुष्य अपना आप ही सबसे बड़ा हानु और अपना आप ही सबसे बड़ा

(१०) आ देवानामि पन्थामगन्म यच्छक्रवाम तदनु प्रवोछुम् । अग्निविद्वान् स यजात् सेदु होता सो अध्वरान् स ऋतून् कल्पयाति ॥ १०१॥ ऋक्०१०।२।३॥

अर्थः — [हम] (यत्) जो [कुच्छ] (शक्तवाम) कर सकते हैं (तत्) उसे (अनु) पूरा (प्र-वोढुं) पार पहुंचानेके लिये (आ) अच्छी तरहसे (देवानां) देवताओं के (पन्थां) मार्गको (अपि-आगन्म) प्राप्त हों। (अग्निः) सर्वप्रकाशक, प्रभु (विद्वान्) जाननेवाला [है], (सः) वह (यजात्) यह करावे (उ) और (सः-इत्) वही (होता) सबका धारण करने तथा सबको दान देनेवाला [है]। (सो) वही (अध्वरान्) यहाँ [तथा] (ऋत्न्) ऋतुओं को (कल्पयाति) सामर्थ्यसे युक्त करे॥ १०॥

<sup>\*</sup> उत्तरार्धमें 'प्रमाद'का अर्थ परमानन्द किया गया है। अथवा, (अतन्द्राः) अप्रमादी [भी] (प्रमादं) प्रमादको (यन्ति) प्राप्त होसकते हैं। अर्थात् सदा जागते रहो। कभी अति-विश्वास करके सो ही न जाओ। जीवनकी पूर्णाहुति पर्यन्त चौकीदारी करना आवस्यक समझो।

प्यारे पुत्रो, जितनी शक्ति है, उसके अनुसार अपना कार्यक्रम बनाओ । गौरीशंकरकी चोटी सबसे ऊंची है। जिसकी हृद्य की दुर्वछता तंग कर रही है, वह वहां नहीं जासकता। पर इसका यह अर्थ तो नहीं कि जहां तक वह जा सकता है, वहां भी न जावे । यहीं बैठा २ रो २ कर दिन पूरे करदे। पुरुषार्थं करनेसे शक्ति बढ़ भी जाती है। आज जो काम नहीं हो सकता, वर्ष भरके अभ्यासके पीछे वही सुगम जचने लगता हैं। यही देवताओंका मार्ग है। इसका अवलंबन करो और प्रभुकी विभूतिका आश्रय हो। देखो, सारे कार्योंको सिद्ध करनेके लिये प्रभुके रचे हुए जगत्के पदार्थीकी आवश्यकता पड़ती है। उसीके सामार्थ्यसे यह ब्रह्माण्ड-यज्ञ हो रहा है। वही सबसे बड़ा होता और दानी है। किसी छोटेसे कामको करके, भूळ कर भी धमण्डमें न आं जाना। इससे आगे कार्य करनेकी शक्ति मारी जाती है। पूरा उद्यम करो और फिर प्रभुपर छोड़ दो। फिर पुरुषार्थ करो और वैसेही भगवानके सपुर्द करदो । इससे असफल होकर शोक न होगा। हां, उत्साह बना रहेगा, और समय आवेगा, जब सफलता भी प्राप्त हो। उदास कभी मत होवो। यही दिव्य-मार्ग है। इसपर चलनेका निरन्तर अभ्यास करते हुए आगे आनेवाले साधनोंको धारणकरो ॥

#### दूसरा खएड

#### आचार-प्रतिष्टा।

महा०—सज्जनो, सावधान होकर अब सुनते चर्छे। देखिये, वेद हमें किस प्रकारकी भगवान्से प्रार्थना करनेके छिये प्रेरणा करता है।

सत्य०—महाराज, क्या प्रार्थनासेही हमारी तय्यारी पूरी हो जावेगी।

महा०—नहीं, बेटा। साथ आचरण भी करो। प्रभुके चरणोंमें विश्वासपूर्वक प्रार्थना करनेसे साधकका बल बढ़ जाता है।

वस्तु०—तो, क्या इसी लिये वेदके सारे उपदेश प्रायः प्रार्थनाके रूपमें हैं ?

महा०—बिल्कुल ठीक। सर्वत्र यही आशय है कि मनुष्य इन बातोंको भगवान्से वर मांगे और धारण करनेका प्रयत्न करे। उद्यमी लोग प्रभुविश्वासकी चटानपर खड़े होकर आश्चर्यजनक कार्य्य कर जाते हैं। आचारकी प्रतिष्ठाके बिना अन्तः करणका विकास नहीं हो सकता। वेद इस विषयमें क्या सुन्दर उपदेश कर रहा है! सुनो,—

(१) परिमाप्ने दुश्चरिताद्घाधस्वा मा सुचरिते भज । उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ अनु ॥१०२॥ यज्ज० ४ । २८ ॥

अर्थः — हे ( अग्ने ) ज्ञानस्त्ररूप, प्रभो ! ( मा ) मुझे ( दुः चरितात् ) बुरे आचरणसे ( परि-बाधस्त्र ) सर्व प्रकारसे

हृदा, (मा) मुझे (सुचिरिते) अच्छे आचरणमें (आ-भज) अच्छे प्रकार लगा। (उत्) और (सुआयुषा) अच्छे लक्ष्यसे युक्त (आयुषा) जीवनसे [युक्त होकर] (अमृतान्) देवताओं और मुक्तात्माओं के (अनु) अनुकूल चलकर (उत्-अस्थाम्) ऊंचा उठ्टं॥ १॥

मानसिक तालाबसे गन्दे पानीको पहिले निकालो । फिर शुद्ध जल डालो । जीवनकी भलाईका चिह्न यह है कि मनुष्य सदा उच्च पुरुषोंके जीवनका अनुकरण करे ।

(२) प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥१०३॥ ०—२९॥

अर्थः—[हम] (स्वस्ति-गां) कत्याणकी ओर ले जाने वाले (अनेहसं) हिंसा रहित (पन्थां) मार्गपर (प्रति-आपक्काहि) सदा चलें, (येन) जिस [पर चलने] से [मनुष्य] (विश्वाः) सब (द्विषः) दुःस्वकारक कार्व्योंको (परि-वृणिक ) छोड़ता [और] (वसु) पेश्वर्यको (विन्दते) प्राप्त होता है॥ २॥

वह मार्ग कदापि सुख और कल्याणका कारण नहीं हो सकता, जिसपर चलते हुए गढ़ोंमें गिरकर जीवनसे ही हाथ थो बैठे। द्वेष करने वाला मनुष्य वास्तवमें अपनेसे द्वेष करता है। उसे कभी मानसिक शान्ति नहीं मिलती। वास्तविक पेश्वर्य सदा उससे दूर रहता है। अहिंसात्मक मार्गपर चलनेसे अपना भी और दूसरोंका भी कल्याण करो।

(३) माहिर्भूमी पृदाकुर्नमस्त आतानानवी प्रेहि । घृतस्य कुल्या उप ऋतस्य पथ्या अनु ॥१०४॥ यज्ज०६।१२॥ अर्थः—[हे साधक], (अहिः) सांप(मा) मत(भूः) वन, (पृदाकुः) अजगर (मा) मत [बंन], (आतान) हे विस्तार पानेवाले, (ते) तेरेलिये [सब ओर] (नमः) अन्नादि सामग्री और प्रतिष्ठा [विद्यमान है], (अनर्वा) सवारीके विना(प्र-इहि) चल पड़ो। (ऋतस्य) सच्चाईके (पथ्याः) मार्गोंके (अनु) साथ २ ( घृतस्य) घृतकी (कुल्याः) नहरें (उप) समीपवर्ती होकर [बहती हैं]॥३॥

सरलता आचारका मूलाधार है। कुटिलता सांपोंमें ही रहने दें। वेद मनुष्योंको सांप बननेसे रोकता है। सरल साधक सत्यको धारण करके और किसी सवारीकी परवाह न करे। घोड़े आदिकी सवारीका उद्देश्य शीघ्र पहुंचना होता है। परन्तु वेद कहता है कि सत्यके मार्गपर शनैः शनैः चलने वाले साधकको किसी प्रकारकी चिन्ता न होनी चाहिये। जीवनकी सामग्रीसे वह कभी तंग न रहेगा। उसकी सारी यात्रा आनन्द, सन्तोष, प्रतिष्ठा और पृष्टिसे युक्त होगी। कुटिलता और झूठसे आरम्भमें शायद कुच्छ सुख मिल जावे। परन्तु उसका परिश्रम दुःखसे भरा हुआ होता है।

(४) सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सचासच वचसी पस्पृधाते । तयोर्थत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवित हन्त्यासत् ॥ १०५॥ ऋक्०७।१०४।१२॥

अर्थः—( चिकितुषे ) विद्वान् ( जनाय ) मनुष्यकेलिये ( सुविज्ञानं ) भली प्रकार [ इस बातका ] समझना सुगम है [ कि ] ( सत् ) सत्य ( च ) और ( असत् ) असत्य ( वचसी ) वचन (पस्पृधाते ) आपसमें छड़ते रहते हैं। (तयोः) उनमेंसे (यत्) जो (सत्यं) सत्य [और] (यतरत्) जौनसा (ऋजीयः) अधिक सरस्रतासे युक्त होता है (तत्) उसकी (इत्) ही (सोमः) सर्वेश्वर्यका प्रभु (अवित) रक्षा करता है, (असत्) असत्यका (आ-हिन्त) नारा कर देता है ॥४॥

सत्य और अनृतका परस्पर झगड़ा सदासे चला आरहा है। विद्वान् मनुष्यको चाहिये कि सत्यका आश्रय ले और असत्यका त्याग करे।

सत्य०—महाराज, यदि असत्य ऐसा बुरा था, तो इसकी उत्पत्ति ही क्यों हुई ?

महा०—भोले भाई, तुम भूल रहे हो । हर प्रकारसे जीवनकी सत्ताको सफल करनेवाले नियमोंका नाम सत्य है । जीवनको नष्ट करनेवाले, दुर्गुणों और दुर्व्यसनोंका नाम असत्य है। बुद्धिका कार्य दोनोंके मध्यमें विवेक करना है। बुद्धिका काम सत्यपर चलना है। बुद्धि और आत्माके बलके सामने असत्य नहीं ठहरता। पर, इस बलके न होनेसे पग पगपर मनुष्य ठोकरें खाता है।

अन्त०—इसका तो यह भाव हुआ कि संसारमें न सत्य है और न असत्य है ?

महा०—नहीं। प्राकृतिक नियमानुसार जो कुच्छ होरहा है, वह सब सत्य है। प्राणियोंद्वारा जो कुच्छ किया जारहा है, वह सत्यहर तथा असत्यहर दो प्रकारका है। इस भेदका कारण पूर्व कहे बळका भेद है। इस छिये अपना बळ बढ़ाओ। सत्यपर चलो । प्रभुने सबके अन्दर विवेककी शक्ति तथा सत्यके प्रति श्रद्धाको स्थापित किया है।

(५) दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापितः । अश्रद्धामनृतेऽद्धाच्छ्रद्धाध्सत्ये प्रजापितः ॥१०६॥ यज्ञ०१९। ७७॥

अर्थ:—(प्रजापितः) परमेश्वरने (दृष्ट्वा) देखकर (सत्यानृते ) सत्य और असत्य (रूपे) रूपोंको (व्याकरोत्) अलग अलग कर दिया है। (प्रजापितः) प्रभुने (अनृते) असत्यमें अश्रद्धा [और] (सत्ये) सत्यमें (श्रद्धां) श्रद्धाको (अद्धात्) धारण किया है॥ ५॥

बालक स्वभावसे सत्यवादी होता है। शनैः २ सभ्यताका अभिमान करनेवाले लोगोंका अनुकरण करताहुआ असत्यह्य आचरणकी शिक्षा पाता है। अतः सत्यह्य, स्वाभाविक प्रवृत्तिको पहचानकर, उसे उन्नत करनेका अभ्यास करना चाहिये। असत्यह्य कर्मका फल अच्छा नहीं होता।

(६) असद् भूम्याः समभवत् तद् द्यामेति महद्यचः । तद्वै ततो विध्यायत् प्रत्यक् कत्तीरमुच्छत् ॥ १०७॥ अथर्व० ४। १९। ६॥

अर्थः—(असत्) असत्य (भूम्याः) भूमिसे (सम्-अभवत्) उठता है, (तत्) वह (द्यां) आकाशमें (महत्) बड़े (व्यचः) विस्तारको (पति) पाता है। (ततः) फिर (वै) निश्चय करके (तत्) वह (वि-धूपायत्) बड़ा फूटता हुआ ( प्रत्यक् ) वापिस ( कर्त्तारं ) कर्त्ताको ( ऋच्छतु ) प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

साधारण लोग असत्यके विस्तारको देखकर कुच्छ दबसे जाते हैं। परन्तु वेद भगवान् चेतावनी देता है कि इस ऊपर ऊपरके साफल्यसे मत भूलो। यह सब कुच्छ क्षणिक हैं। अन्तमें उस पापका कर्त्ता जकड़ा जानेवाला है। भला वही है, जिसका अन्त भला है। इस लिये सदा सत्याचरणमें ही अद्धा करे।।

(७) यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा । यथोत मञ्जूषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ॥ १०८॥ अथर्व ६।१८।२॥

अर्थः—(यथा) जैसे (भूमिः) भूमि (मृतमनाः) मरे हुए मनवाली, (मृतान्) मुर्देसेभी (मृतमनस्तरा) अधिक मरेहुए मनवाली [है], (उत) तथा (यथा) जैसे (मम्रुषः) मरेहुएका (मनः) मन [मुद्दां होजाता है] (एव) ऐसेही (ईच्योंः) ईर्ष्यां करनेवालेका (मनः)मन (मृतं) मरजाता है॥७॥

सत्याचरणी ईष्यों और द्वेषके इस भयानक परिणामकों समझते हैं। वे इस हृद्याग्निमें नहीं झुलसते और जलते। वे सबकी उन्नति चाहते हैं। मिट्टी और पत्थरमें दिल नहीं, मुदी शरीरमें दिल ठण्डा पड़जाता है। परन्तु ईष्यों करनेवाला जीवित जाम्रत् होता हुआभी अपने हृद्यको पत्थर और मुदी होनेसे नहीं बचा सकता। वह अपनीही जलाईहुई भट्टीमें दिनरात भुखता रहता है।

(८) यो नो रसं दिप्सित पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनताम् । रिपुः स्तेनः स्तेयक्रद्दश्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा तना च ॥ १०९॥ ऋक् ७ । १०४ । १०।

अर्थः—(यः) जो (नः) हमारे मध्यमें (पित्वः) अन्नके (रसं) रसके विषयमें, (यः) जो (अश्वानां) घोड़ों (गवां) गौओंके (तनूनां) शरीरोंके संबंधमें (दिण्सिति) घोखा करता है, हे (अग्ने) सर्वज्ञ, प्रमों, (सः) वह (रिपुः) शत्रु (स्तेनः) चोर (स्तेयकृत्) चोरी करनेवाला (दम्रं) नीचताको (पतु) प्राप्तहो। (च) और (तन्वा) स्वयं [तथा] (तना) सन्तानके विषयमें (नि हीयतां) पतितहो॥ ८॥

प्यारों, कितने दुःखकी बात है। आज इस देशमें न अन्न ठीक मिलता है और न दूध और घी मिलता है। वेदके शब्दोंमें पापी लोग अन्नके रस और पशुओंके शरीरकी चोरी कर रहे हैं। राजाका कर्त्तव्य है कि इन सामाजिकशत्रुओंको उचित दण्ड देवे। कितना शोक है कि जहांके धर्म-प्रन्थोंका यह आदर्श था, वहांही ऐसा अनर्थ होरहा है।

(९) परः सो अस्तु तन्वा तना च तिस्नः पृथिवीरघो अस्तु विश्वाः । प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥११०॥ ०—११

अर्थ:—(यः) जो (नः) हममसे (दिवा) दिनको (च) या (नकं) रातको (दिप्सिति) दम्म [ओर चोरी आदि] करना चाहता है, हे (देवाः) देवताओ, (अस्य) इसका (यशः) यश (पिर) पूरी तरह ( शुष्यतु )सूखजावे। ( सः ) वह (तन्वा) स्वयं ( च ) और ( तना) सन्तानके विषयमें [ सभ्य समाजसे] (परः ) बाहिर ( अस्तु ) हो, [ वह ] ( विश्वाः ) सारी ( तिस्नः ) तीनों ( पृथिवीः ) पृथिवियोंके ( अधः ) नीचे ( अस्तु ) हो ॥९॥

वेद भगवान्के सभ्य समाजमें दम्भी, पाखण्डी, चोरोंका कोई स्थान नहीं। पृथिवीपर उनका रहना ठीक नहीं। एकके स्थानपर तीन पृथिवियांहों और उनसेभी नीचे कोई स्थानहो, तो वहां ऐसे दुष्कर्मियोंको धकेल देना चाहिये। यह कर्म यशके घातक है। प्रत्येक साधकको अपना घर इनसे बचाकर, शुद्ध रखना चाहिये।

(१०) देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्चिना । वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि द्धतः ॥१११॥ यज्ज० १९।१२

अर्थः—(इन्द्राय) इन्द्रकेलिये (इन्द्रियाणि) इन्द्रियोंको (द्धतः) धारण करनेवाले [साधक] की (सरस्वती) विद्या (वाचा) वाणीद्वारा (भिषक्) वैद्य [का काम करती] है। [उसके लिये] (देवाः) देवता (यज्ञं) यज्ञका (अतन्वत) विस्तार करते हैं, (भिषजा) वैद्य (अश्विना) अश्वी (भेषज्ञं) चिकित्साका [विस्तार करते हैं॥ १०॥

इन्द्र जीवात्माका नाम है। जो साधक इग्द्रियोंके अधीन न होकर, उनको अपने वशमें रखता है, उसकी वाणीमें लोगोंके लिये विशेष, हितकारी प्रभाव होता है। उसकी सम्मतिसे चलकर, उनके सकलदोष दूर होजाते हैं। वह जहां देखता है, यश अर्थात् परोपकारके विस्तारकोही देखता है। अश्वी, अर्थात् सूर्यं और चन्द्र अथवा दिन और रात, प्रतिक्षण संसारके दुः खहरणकी सामग्री उसके आगे रखते रहते हैं। संयमी मनुष्य स्वयं सुखी रहता और दूसरोंको सुखी बनाता है।

(११) सप्त मर्यादाः कवयस्ततश्चस्तासामेकामिदभ्यं-हुरो गात् । आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे घरु-णेषु तस्थौ ॥११२॥ ऋक्०१०।४।६॥

अर्थः—(कवयः) विद्वानोंने (सप्त) सात (मर्यादाः)
मर्यादाएं (ततश्चः) बनाई हैं, (तासां) उनमेंसे (एकां-इत्)
एककोमी [जो] (अभि-गात्) उल्लंघन करे, [वह] (अंहुरः)
पापी [होता है]। (ह) निश्चय करके (आयोः) जीवनका
(स्कंभः)आधार(प्रभु)(उपमस्य)समीपवर्ती (नीडे) मकानमें
[अर्थात् भूमिपर] (पथां) मार्गोंके (विसर्गे) विस्तारके स्थान
[=अन्तरिक्ष] में (घरुणेषु) जलोंमें (तस्थो) विराजमान है।

सामाजिक शान्तिके लिये वैदिक ऋषियौंने सात मर्यादाओं को उल्लंघन करना पाप माना है। (१) चोरी (२) कामा-तुरता (३) हिंसा (४) असत्य (५) नशिले द्रव्यों का सेवन (६) जुआ और (७) इस प्रकारके व्यसनें में पड़कर, ज्ञान होनेपर भी लूट न सकना—यह भयंकर परिणाम है, जिनसे बचने केलिये आहिंसा, सत्य, अस्तेय संयम, ऋजुता, न्याय तथा अलोम आदि मर्यादाओं के अन्दर रहना चाहिये। परमात्मा जल, स्थल और आकाशमें विराजमान होकर; घर २ का अन्तर्यामी बना हुआ है किसी प्रकारके बाह्य अथवा आन्तरिक पापको मनुष्य उससे लिया नहीं सकता।

वस्तु०—महाराज, इस प्रकार और धर्मपुस्तकोंने भी नियम बांधें हैं ?

महा०—हां, बेटा, प्रायः जितने सम्प्रदाय हैं, सबके धर्मप्रन्थों में इस प्रकारका वर्णन मिलता है। परन्तु वेदके शब्दों में जो बल है, वह और कहीं नहीं। धार्मिक दृष्टिसे उच्चसे उच्च आदर्श यह पवित्रग्रन्थ आपके सामने रखता है।

सत्य०-और, यह है सबसे पुराना प्रन्थ।

महा०—निस्सन्देह । वेद सब धर्मपुस्तकों से प्राचीन होता हुआ भी सबसे अधिक शिक्षादायक है । वैदिक सभ्यता आदर्श सभ्यता है । इन प्रमाणोंके होते हुए, जो उत्तरोत्तर विकासवादी वेदकी निन्दा करते हैं, वे सूर्य पर थूकते हैं ।

माया०-महाराज, अब और क्या प्रसंग चलेगा ?

महा०-बस, आज इतना ही बहुत है। कल इस बातपर विचार करेंगे, कि इन बातोंको हम धारण कैसे कर सकते हैं।

## तीसरा खएड

#### यात्राका आरम्भ।

लोक॰—महाराज, जिस वैदिक मार्गको आपने उपदेश किया है, उसपर अब चलनेकेलिये आवश्यक तथ्यारी क्या होनी चाहिये?

महा०—प्यारे बेटा, मार्गको जब जान लिया, तो उसपर चल पड़ना ही तरयारी है। जैसा यह मानसिक मार्ग है, ऐसीही इसके छिये तच्यारी भी मानिसक चाहिये। सबसे प्रथम प्रतिदिन प्रातः उठकर मधुर स्वरसे प्रभुसे यह प्रार्थना किया करो।

(१) अग्ने त्वं सुजागृहि वय्ध्सुमन्दिषीमहि। रक्षाणो अप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥११३॥ यजु० ४।१४॥

अर्थः—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप, भगवन्, (त्वं) आप (सु) अच्छी तरहसे (जागृहि) जागें, (वयं) हम (सु) अच्छी तरहसे (मिन्दिषीमहि) आनन्द पार्वे। (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित होकर (नः) हमारी (रक्षा) रक्षा करे। (नः) हमें (पुनः) (प्रबुधे) जागनेके [योग्य] (कृधि) बनाओ॥१॥

भगवन्: आपका ज्ञान सदा एकरस बना रहता है। परन्तु हम अपनी भूळसे आपकी छत्रच्छायाके नीचे रहते हुए भी; आपकी दया तथा सहायताके पात्र नहीं बनते। हे हमारे हृद्यों के स्वामिन्, आवरण दूर हो, अविद्याका नाश हो। हम अज्ञानकी छपेटमें आकर गाढ़ निद्रामें सोते हुए, आपको भी सोयाहुआ समझे बैठे थे। हे भगवन्, जो हुआ, सो हुआ। अब सर्वत्र जागृति हो। प्रमाद दूर हो। आपकी कृपासे यह हमारी धार्मिक जीवन-यात्रा सफळ हो। इस प्रकार भगवानकी आराधना करके अपने दिन भरके काय्योंको उत्साहसे करनेका संकल्प धारण करो। जीवनमें मिठास पैदा करनेका प्रयक्ष करो। घवराहट से कोई काम मत करो।

(२) मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् । वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दशः ॥११४॥ अथर्व० १।३४।३॥ अर्थः—(मे) मेरा (निक्रमणं) पग घरना (मधुमत्) मिठाससे युक्त [हो], (मे) मेरा (परा-अयनं) आगे बढ़ना (मधुमत्) मीठा [हो]। (वाचा) वाणीसे (मधुमद्) मीठा (वदामि) बोलूं। (मधुसन्दशः) मधुर दृष्टिवाला (भूयासं) होऊं॥२॥

प्रत्येक साधकको संसारके अन्दर रहकर ही सिद्धि प्राप्त करनी है। दूसरोंके साथ व्यवहारमें आना पड़ेगा । सबका स्वभाव पक जैसा नहीं होगा । सब प्रकारके लोगोंसे संसर्ग होगा। प्यारो, देखना, कहीं साधक बनतेहुए असहिष्णु होकर अपना ही योग खराब न कर बैठना। जिस मार्गपर अब तुम चलोगे, उसपर सर्व साधारण नहीं चलते । इस लिये कहीं उनके प्रति तुम्हारे अन्दर घृणाका भाव न पैदा होजावे । वेदका यह सन्देश रहस्य से पूर्ण है। यह अनुभव किया गया है कि संयमी और अभ्यासी लोगोंमें कुच्छ चिड्चिड्रापन आजाता है। यह ठीक नहीं हैं। वह योग क्या हुआ, जो मिठासकी ही हर छे। इस छिये वेद भगवान्के इशारेको समझो । उत्साह और माधुर्य्यसे युक्त होकर कार्यका आरम्भ करो । वैसे ही उसमें आगे बढ़े चले। जब दूसरोंसे बोलो, मीठी वाणी बोलो। जब उनकी ओर देखो, मिठाससे भरी आंखसे देखो । सबसे प्रीति और मित्रभाव रक्खो । अशान्ति और क्रोधको अपनी शान्तिके अमृतसे ठण्डा कर दो । जब कोई क्रोध करे, तो उसे यह कहो-

(३) अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः । यथा संमनसौ भृत्वा सखायाविव सचावहै ॥११५॥ अथर्व०६।४२।१॥ श्रर्थः—[हे सज्जन, ] (धन्वनः) कमानके (ज्यां) चिल्लेकी (इव) तरह (ते) तेरे (हृदः) हृद्यके (मन्युं) उबालको (श्रव-तनोमि) ढीला करता हूं। (यथा) ताकि (संमनसौ) एक मनवाले (भृत्वा) होकर (सखायौ-इव) मित्रोंके समान (सचावहै) मिलकर कार्य करें॥ ३॥

प्यारो, ऐसा कहकर, श्रापनी शान्तिसे उसे शान्त कर सकतेहो। पर जब दोनोंही वीर कमान कसकर खौलरहे हों, तो शान्ति कैसे रहे? मित्रता कैसे रहे? मिलकर कार्य कैसे हो? संसारका कल्याण कैसे हो? मानस योगकी सिद्धि कैसे हो?

(४) अक्ष्मन्वती रीयते स <sup>ध्</sup>रभध्वम्रुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।अजात्रहीमो ऽिशवा ये असञ्छ्वान् वयम्रुत्तरेमाभि वाजान् ।। ११६॥ यज्ञ० ३४। १०।

श्रथं:—(श्रश्मन्वती) पत्थरोंवाली [नदी] (रीयते) चलरही है, (सं-रभष्वं) तथ्यार होजाश्रो, (उत-तिष्ठत) उठो (सखायः) मित्र [बनकर] (प्र) श्रच्छी तरहसे [उसे] (तरत) पार करो। (श्रत्र) यहां [परही] (ये) जो (श्रशिवाः) दुःख देनेवाले [पापात्मक विचार तथा कर्म] (श्रसन्) हों, [उन्हें] (वयं) हम (जहीमः) छोड़ते हैं, (शिवान्) मंगल करनेवाले (वाजान्) बलादिको (श्रमि-उत्तरेम) श्रच्छे प्रकार प्राप्तहों ॥४॥

माया०—महाराज, यह नदी कौनसी है ? क्या संसारसे तात्पर्य है ?

महा०-हां, यही पत्थरोंवाली नदी है, जिसे हम सबने पार करना है। यह कठिन कार्य है। पहाड़ी लोगोंको ऐसी निद्यां पार करतेहुए श्रापने देखा होगा। चार २ पांच २ मनुष्य एक दूसरेका हाथमें हाथ पकड़कर, इनके बड़े २ वेगोंको पार करलेते हैं। श्रकेले दुकेलेका यह काम नहीं । सोये हुश्रोंका यह काम नहीं। श्रतः संगठित होकर, परस्पर सहायक बनकर चलो। श्रमंगल श्रौर श्रसत्यके विचारोंको यहीं छोड़दो। बल, उत्साह और सिद्धिके संकल्पोंसे श्रपने मनको भरदो। पुग्य और पापका मेल नहीं होसकता, यह निश्चय जानो।

(५) यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे । ताभिष्टमस्मां आभि सं विशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः ॥११७॥ अर्थव० ६। २। २६॥

श्रर्थः—(काम) हे काम, (याः) जो (ते) तेरे (शिवाः) शान्ति करनेवाले (भद्राः) कल्याण्युक्त (तन्वः) स्वरूप [हैं], (याभिः) जिनकेद्वारा (यद्) जो कुच्छ (वृणीषे) त्र चाहता है [वह ] (सत्यं) पूरा (भवित) होजाता है। (ताभिः) उनके साथ (त्वं) त्र (श्रस्मान्) हमारे (श्रभि-सं-विशस्व) धन्दर प्रविष्ट हो, (पापीः) पापी (धियः) वासनाश्रोंको (श्रन्यत्र) बाहिर (वेशय) कर दे॥ ४॥

मानसिक सागरमें इच्छाकी तरंगें उठती रहती हैं। यह पुग्य, पापके भेदसे दो प्रकारकी हैं। हे साधको, अपने मनको पुकारकर कह दो कि कोई बुरी इच्छा पैदा न हो। जो इच्छा पैदा हो और पूरी न हो, या मनुष्यको हानि पहुंचावे, वह निर्वल बनाती है। अतः क्रियात्मक योगकी सिद्धिका यही उपाय है, कि छोटा पग धरो, पर वह निश्चल भूमिपर हो। तुम्हारी चाल प्रतिष्ठा श्रौर स्थिरतासे युक्त हो । इसका परि-गाम यह होगा कि जहां भी सांभ होजावेगी, वहीं तुम प्रतिष्ठित होसकोगे। यह श्रनुभव नहीं होगा कि कहां निकल श्राये। यहां तो निर्जन वन है श्रौर कोई सहारा नहीं है। इस लिये इच्छाश्रोंकी डोरी इतनी लम्बी मत छोड़ो, कि तुम्हारे वशसे बाहिर होकर, कष्टका साधन बन जावें। श्रौर, इस बातका भी ध्यान रक्खो कि वे सदा शिवरूप श्रौर मंगलमय हों। ऐसा साधन श्रौर श्रभ्यास करनेसे चित्तका प्रसाद प्राप्त होगा श्रौर जो वत श्रहण करोगे, उसके पूरा करनेमें सुभीता होगा।

(६) तपश्चास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे । तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥११८॥ श्रथर्व०११।८।६॥

धर्थः—(महति) बड़े (धर्मावे) समुद्रके (ध्रन्तः) ध्रन्दर (तपः) तप (च) ध्रौर (कर्म) (ध्रास्तां) थे। (तपः) तप (ह) निश्चय करके (कर्मगः) कर्मसे (जज्ञे) पैदा हुध्रा, (तत्) उसे (ते) उन्होंने (उयेष्ठं) सबसे बड़ा [मानकर] (उपासत) धारण किया॥ ६॥

सब प्रकारकी उन्नतिका मूल कर्म है । इस महासागर, संसारकी उत्पत्तिमें भगवानकी प्रेरणासे सब कुच्छ हुआ । वहीं प्रेरणा कर्मका बीज हुई । सारा जप, तप, ध्यान ध्यौर योगा-भ्यास शारीरिक या मानसिक कर्मरूप है । कर्मको ही सब साधनोंसे श्रेष्ठ ध्यौर सबका मूलकारण समको । इसीकी उपा-सना करके देवताध्योंका देवतापन, ऋषियोंका ऋषिपन ध्यौर महात्माध्योंका महात्मापन सिद्ध हुआ । इसे धारण करो । कर्म-

हीनता महापाप है । कर्मगयता महापुग्य है । इस लिये वेद भगवान इस पवित्र मार्गके पथिकोंको उपदेश करता है कि वे कर्मवीर, धर्मपरायण बननेका यत्न करते रहें।

(७) भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षाम्रुप-निषेदुरग्रे । ततो राष्ट्रं बलमोजश्र जातं तदस्मै देवा उप-संनमन्तु ॥ ११९ ॥ अथर्व०१६। ४१ । १॥

श्रथं:—(स्वर्विदः) श्रानन्दरूप लह्यको समभनेवाले (अष्ट्रयः) ऋषियोंने (भदं) कल्याणकी (इच्छन्तः) इच्छा करतेहुए (श्रश्रे) पहिले (तपः) तप [श्रौर] (दीहां) दीह्राको (उप-निषेदुः) धारण किया।(ततः) फिर (राष्ट्रं) राष्ट्र (बलं) बल (च) श्रौर (श्रोजः) श्रोज (जातं) पैदा हुश्रा (तत्) इसलिये (श्रस्मै) इस [साधन] को (देवाः) विद्वान (उप-संनमन्तु) श्रादरसे धारण करें॥ ७॥

प्यारे साधको, सुख प्रत्येक प्राणी चाहता है, परन्तु उसे पाता नहीं। मृषि भी सुख चाहते हैं। परन्तु वे पहिले ज्ञान-चज़ुसे श्रविनाशी सुखके स्वरूपको समम्भकर, उसे धारण करनेकेलिये तप थ्रौर दीन्नाका श्राश्रय लेते हैं। कर्म करना ठीक है। परन्तु प्रत्येक कर्म एक जैसा नहीं होता। वही कर्म श्रेष्ठ है, जो साधकके तपको सिद्ध करावे लच्च्यतक पहुंचनेके लिये कर्म बराबर जारी रहे। सैंकड़ों थ्रौर लाखों विभ्न श्रावें। रोग हो, निर्धनता हो। राज्य-कोप हो, समाज-कोप हो, विश्वास-धात हो, मित्र-द्रोह हो। जो कुच्छ हो, सो हो। परन्तु कार्य्य-सिद्धिका उद्देश्य न थ्रोमल हो। इस मानसिक धारणाके

कियात्मकरूपका नाम तप है। यह श्रेष्ठ कर्मरूपी बीजका सुगन्धियुक्त फूल है। दीज्ञाका भाव है, उचित योग्यता। जिस कार्यको सामने रखो, उसकेलिये द्यधिकारी भी बनो। एक बालक बड़ा परिश्रमी है। परन्तु द्यज्ञानके कारण वह चाहता है कि द्यमीसे सबसे ऊंची परीज्ञाको पास कर लं। क्या उसका तप काम द्यावेगा? नहीं, क्योंकि वह उस कार्यमें दीज्ञित हुए विना लग रहा है। हां, उसे धैर्य्यधारण करके द्योटी परीज्ञाञ्चोंको क्रमसे उत्तीर्ण करना चाहिये। समय द्यावेगा, जब वह द्यान्तिम परीज्ञाको भी पार कर सकेगा। इसी द्याश्यसे ऋषियोंने द्यधिकारी-भेदसे भिन्न २ द्याश्रमों द्यौर वर्णीका विभाग किया द्यौर सबके भिन्न २ कर्म तथा धर्म निश्चित किये।

श्वानपूर्वक तप श्रौर दी ह्वाको धारण करने से, वेदके उपदेशा नुसार लोक श्रौर परलोककी संपत्ति मिलजाती है। राज्यबल मांगो, धन, धान्य मांगो, ब्रह्मवर्चस मांगो, तेज श्रौर कान्ति मांगो, जो चाहो, सो मांगो। सब मिलेगा। परन्तु प्रत्येक साधकको कल्याणका द्वार तप श्रौर दी ह्वाके मार्गपर चलते हुए ही दिखाई पड़ेगा। यह द्वार सबके लिये एक जैसा खुला है। यही वैदिक शिह्माका महत्त्व है। सारे संसारको एक बात कहदी है। मिन्न २ व्यक्तियां श्रौर जातियां श्रपनी २ परिस्थिति श्रौर श्रिधकारके श्रनुसार इसपर श्राचरण करें श्रौर सुख पांचे।

(८) व्रतेन दीक्षामामोति दीक्षयामोति दक्षिणाम् । दिच्चिणा श्रद्धामामोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ १२०॥

यज्ञ० १६। ३०॥

श्रर्थः—(व्रतेन) व्रतके द्वारा [साधक] (दीन्नां) दीन्नाको (श्राप्नोति) प्राप्त होता है, (दीन्नया) दीन्नाद्वारा (दिन्नणां) दिन्नणाको (श्राप्नोति) प्राप्त होता है। (दिन्नणा) (श्रद्धां) श्रद्धातक (श्राप्नोति) लेचलती है, (श्रद्धया) श्रद्धा-द्वारा (सत्यं) सत्यकी (श्राप्यते) प्राप्ति होती है॥ ॥

सज्जनो, इस मंत्रने श्रापकेलिये चार पडाव बना दिये हैं। आपके मनमें यह इच्छा उठ रही होगी, कि हम तप और दीन्नाको धारण करके, मनोरथ सफल करें, श्रापकी यह इच्छा बड़ी पवित्र है। परन्तु यदि वास्तवमें सिद्ध होना चाहतेहो, तो व्रत ब्रह्म करो। कोई बात निश्चित करलो। उदाहरमकेलिये दोनों समय सन्ध्या करनेका व्रत ग्रहण करो । श्रव सोचो, सनध्या कैसे करोगे। आपको मन्त्र स्मरण करके, उनका अर्थ समभना चाहिये। केवल तोतेकी तरह रटनेका कोई आत्मिक लाभ नहीं होसकता। इसलिये किसी योग्य गुरुके पास पहुंचो। सेवा तथा योग्यतासे उसकी कृपाके पात्र बनो और उसके उपदेशसे सच्चे श्रास्तिकभावसे युक्त होकर, सन्ध्याके श्रासनपर बैठनेके अधिकारी बनो। अब आप दीज्ञारूपी दूसरे पड़ावपर पहुंच चुकेहो । ग्रब ध्यानसे चलना। मन चंचल है । इधर उधर भटकावेगा। इसकी बातोंमें ग्राकर, कहीं इधर उधर भटकने न लग जाना। यदि रातभर जागते रहे, नाटकों श्रौर तमाशोंमें फिरते रहे, तो प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठ नहीं सकोगे । यदि व्यायाम, स्नान, दन्तधावनादि शारीरिककार्य ठीक न करोगे, तो ध्यान स्थिर नहीं होगा और ग्रासनभी ठीक न लग सकेगा। परिणाम यह होगा कि तुम्हारा संध्याका वत सफल

न हो सकेगा, इसिलिये अपने सारे जीवनको, खान, पान, शयन और जागरणको नियममें लाकर, संध्या करनी आरंभ करो, तो मार्ग विस्तृत होने लगेगा। स्वास्थ्य बढ़कर शारीरिक सुख होगा। मानसिक शान्ति प्राप्त होने लगेगी, काम करनेमें चित्त लगेगा। यही दक्तिणाकी प्राप्ति है। अब तुम्हारा विश्वास बढ़ेगा। सन्ध्यामें अधिक चित्त लगेगा। इसके सामने शेष सुख तुच्छ प्रतीत होंगे। श्रद्धाकी मनमें प्रतिष्ठा होगी। समय आवेगा, जब कि योगयुक्त होकर, तुमलोग नित्यानन्दके भागी बनो। यही सत्यकी प्राप्ति है। प्यारो, वत, दीन्ना, दन्निणा और श्रद्धाके चार स्तंभोंपर सत्य-देवताका विशाल भवन खड़ा है। इन्हें उक्त प्रकारसे समक्तो और धारण करो।

(९) अग्ने त्रतपते व्रतश्चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात् सत्यम्रुपैमि ॥ १२१ ॥

यजु० १ । ५ ॥

श्रर्थः—हे (श्रग्ने) ज्ञानस्वरूप, (व्रतपते) व्रतोंके रक्तक, (व्रतं) व्रतका (चिरिष्यामि) पालन करूंगा, (तत्) इसिलिये (शकेयं) सामर्थ्यसे युक्त होऊं, (मे) मेरा (तत्) वह [व्रत] (राध्यतां) सिद्ध हो। (इदं) यह (श्रहं) मैं (श्रनृतात्) श्रसत्यसे [निकलकर] (सत्यं) सत्यको (उपैमि) पाऊँ॥ ६॥

महाशयो, इस सत्य-प्रहण्णपी व्रतको सबसे पहिले धारण करो। सदा अब इसका ही ध्यान रखना। मन, वचन और कमसे कभी भूलकर भी असत्यका विस्तार न करना। सत्यके मगुडन और असत्यके खगुडनकेलिये सदा उद्यत रहना। (१०) प्रस मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन । न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्लोत्यन्तितो न दूरात् ॥ १२२॥ श्रुक्०३। ४९।२॥

श्रथं:—(मित्र) हे सर्व ससारके मित्र, प्रभो, (श्रादित्य) श्रखगड नियमोंके स्वामिन, (यः) जो (ते) तेरे (व्रतेन) व्रतके श्रमुसार (शित्तति) कार्य करता है, (सः) वह (मर्तः) मनुष्य (प्रयस्वान्) धन, धान्यसे युक्त होकर (प्र-श्रस्तु) उन्नत हो। (त्वोतः) तुक्तसे रित्तत होकर (प्र) [वह ] (हन्यते) मारा जाता [श्रौर] (न) (जीयते) जीता जाता है, (न) (श्रम्तितः) समीपसे [श्रौर] (न) (दूरात्) दूरसे (एनं) उसे (श्रंहः) पाप (श्रश्लोति) जूता है।। १०॥

इस प्रकार, प्यारो, जगदीश्वरकी आज्ञाओंको अपने जीवनका आधार बनातेहुए, धार्मिक व्रतोंको धारण करतेहुए, मधुरता और शान्तिको अपने आचरणका भूषण बनातेहुए, इस यात्राका आरंभ करो। इसका फल शान्ति और कल्याण होगा। इसका वर्णन कल करूंगा।

## —ः∘ः— चौथा खएड

# शान्तिका सन्देश।

महा०—प्यारे सज्जनो, जिन वातोंको श्राप कुच्छ दिनसे सुनते चले श्रारहे हो, वह एक नया संसार है। श्रह, जहां न राग हो, श्रोर न द्वेष हो, न वैर हो, श्रोर न ईर्ष्या हो, न शोक हो श्रौर न मोह हो, वहां पहुंचना कितने सौभाग्यकी बात है। सारे व्यवहार प्रेम श्रौर सहयोगसे चलते हों। कोई किसीको श्रोखा न दे। कोई श्रसत्य न बोले। सत्य है, यह नया संसार है। परन्तु वेद हमें वहीं पहुंचनेका उपदेश करता है।

(१) विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव । अति गाहेमहि द्विष: ॥ १२३ ॥ ऋक्०२। ७। ३॥

श्रर्थः—( उत ) श्रौर [ हे प्रभो, ] (त्वया ) तेरी सहा-यतासे ( वयं ) हम ( उद्न्याः ) जलकी ( धाराः ) धाराश्रोंकी ( इव ) तरह ( विश्वाः ) सब प्रकारकी ( द्विषः ) द्वेषकी भाव-नाश्रोंको ( श्रति गाहे-महि ) लांघ सकें ॥ १॥

प्यारो, यही प्रभुसे नित्य वरदान मांगा करो। वर्षोंकी कमाई थोड़ी-सी द्वेष-बुद्धिके ब्राजानेसे मिट्टीमें मिल जाती है। प्रभो, संसारके लोग परस्पर द्वेष करना छोड़ दें।

(२) इदमुच्छ्रेयोवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् । असपताः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥ १२४ ॥ अथर्व०१६।१४।१॥

श्रर्थः—(इदं) इस (श्रवसानं) श्रन्तिम (श्रेयः) कल्यास [=जीवनमुक्ति ] को (उत-श्रागां) प्राप्त होचुका हूं, (मे) मेरेलिये (द्यावापृथिवी) सूमि श्रौर श्राकाश (शिवे) शिवरूप (श्रस्तां) होचुके हैं। (मे) मेरे (प्रदिशः) [सब ] प्रदेश (श्रसपताः) शत्रुरहित (भवन्तु) हों, (वै) क्योंकि [हे संसार ] (त्वा ) तेरे साथ [ हम ] नहीं ( द्विष्मः ) द्वेष करते, (नः) हमारेलिये ( श्रभयं ) श्रभय ( श्रस्तु ) हो ॥ २ ॥

प्यारो, भगवानका भक्त जिस शिखरपर चढ़कर यह घोषणा करता है, वह हमें यहांसे पूरी तरह दिखाई भी नहीं देती। परन्तु वेद भगवानके आदर्शके अनुसार, यह उच्च दशा सबको प्राप्त होसकती है। साधनाकी आवश्यकता है। पूर्व कहे मार्गके अवलम्बनसे ही मनुष्य इस मस्तीका लाभ कर सकता है। उस समय उसे चारों ओर शान्ति और प्रेमके ही दश्य दिखाई देते हैं। वह स्पष्टकपसे अनुभव करता है कि मैं किसीसे द्रेष नहीं करता और मेरेलिये कहीं भय नहीं। इस अवस्थाकी प्राप्तिकेलिये हम सबको लगे रहना चाहिये।

(३) वैश्वदेवीं वर्चस आरमध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः । अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्व-वीरा मदेम ॥ १२५॥ अर्थवं०१२।२।२८॥

श्रथं:—[हे साधको ] (वर्चसे ) प्रकाश [की प्राप्ति ] केलिये (वैश्वदेवीं ) सब देवताश्रोंके साथ सम्बन्ध रखनेवाली [जीवन-नीति ]को (श्रा-रभध्वं )धारण करो, (श्रुद्धाः )श्रुद्ध (श्रुचयः )पवित्र (पावकाः )श्रुद्ध करनेवाले (भवन्तः )होते-हुए, (दुरिता ) बुरे (पदानि ) मार्गीको (श्रतिक्रामन्तः ) लांघतेहुए [हम] (सर्ववीराः) सब वीरोंसे युक्त होतेहुए (शतं ) सौ (हिमाः)वर्ष (मदेम) श्रानन्द करें ॥३॥

पूर्व कही जीवन-नीतिहीका आश्रय करनेसे सम्पूर्ण श्रानन्दकी प्राप्ति होगी । उसको धारण करतेहुए दो बातोंका सदा ध्यान रखना चाहिये। हम स्वयं शुद्ध हों। जो हमारे साथ रहे, वह भी शुद्ध होजावे। बुराईसे परे परे रहकर साधनामें लगे रहना चाहिये। यह कार्य वीरोंका है। श्रसफलतासे निराश होकर श्रात्म-घातकेलिये तय्यार होजानेवाले कायरोंका नहीं। श्रतः वेदका यह उपदेश है कि वीर बनकर सारी श्रायु इस पवित्र पुरुषार्थमें लगे रहना चाहिये। शनैः २ बुद्धिकी स्थिरता प्राप्त होने लगती है।

(४) तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहंवृणे सुमतिं विश्ववाराम् । यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां महिषो भगाय ॥ १२६॥ अथर्व०७। १४ । १॥

श्रर्थः—(सिवतः) हे सर्व-प्रेरक, प्रभो, (तां) उस (सत्यसवां) सत्यको पैदा करनेवाली (सुचित्रां) श्राश्चर्यरूप, (विश्ववारां) सर्व मनोरथोंको देनेवाली (सुमिति) सुमितिको (यां) जिसे (श्रस्य) इस [बात] का (कग्वः) विद्वान (मिहषः) महत्त्वको प्राप्त हुश्चा २, [इस] प्रपीनां) श्रञ्छी तरहसे उन्नत, (सहस्रधारां) सहस्रोधाराश्चोवालीको (श्रदुहत्) दोहता है, (श्रहं) मैं [भी उसेही] (श्रावृशो) वरता हुं ॥४॥

यहां पर सुमितिको कामधेनुकी तरह दोही जानेवाजी, सब मनोरथोंकी सिद्ध करानेवाजी कहा है। पूर्व कहे प्रकारसे स्थिरमित पैदा होती है। उसकी स्थिरताका यह चिह्न है कि प्रब जोभी मनमें विचार उठता है, वह स्वभावसेही सञ्चा होता है। यह दिन्य-सम्पत्ति है। इसे कौन नहीं चाहता ? पर वेद भगवान बतजाता है कि इस सुरगवीको श्राप्त, विद्वान पुरुषही दोहना

जानते हैं। पूर्व प्रसंगोंमें बतायेडुए लंबे श्रौर कठिन मार्गपर चलनेकाही यह फल होसकता है। इसीकी प्राप्ति धीर, वीर पुरुषोंका लच्च होता है।

(५) त्वमग्ने प्रथमो अंगिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा । तव व्रते कवयो विद्यनापसो ऽजायन्त मरुतो श्राजदृष्टयः ॥ १२७॥ यज्ञ० ३४ । १२॥

द्यर्थ:—( ग्रग्ने) हे सर्वेज्ञ प्रभो, (त्वं) श्राप (देवानां) देवताश्रोंके (शिवः) कल्याणकारी (सखा) मित्र, (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ (श्रंगिराः)प्राण्रूष्ठ (ऋषिः) सर्वेदर्शी (देवः) प्रकाश-स्वरूप (श्रमवः) हो। (तव) श्रापके (वते) वतके श्रनुसार [चलकर] (कवयः) बुद्धिमान (श्रापसः) कर्मवीर (महतः) विद्वान (विद्यना) ज्ञानसे [युक्तहोकर] (भ्राजदृष्ट्यः) चमकनेवाली दृष्टिसे युक्त (श्रजायन्त) होजाते हैं॥ ६॥

सज्जनो, जैसा श्रादर्श मनुष्यके सामने रहता है, वह वैसाही श्रपने श्राप बनता चलाजाता है। श्रतः वेद भगवान् बतलाता है कि ऋषियोंकी दृष्टिकी सुद्मताका कारण यह होता है कि वे प्रभुके प्रकाशको श्रपना लद्म्य बनाते हैं। वे कर्ममें निपुण श्रीर बुद्धिमान तो होतेही हैं। जब प्रभुके श्रनुपम प्रकाशके साथ उनका संबंध जुड़जाता है, तो फिर बिल्कुल कोई न्यूनता नहीं रहती। प्रभुके व्रतोंको पालन करनेका उन्हें यह प्रसाद मिलता है।

(६) इते दृश्ह मा मित्रस्य मा चश्चषा सर्वाणि भृतानि स-

मीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भृतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १२८ ॥ यज्ञ० ३६ । १८ ॥

श्रर्थः—( हते ) हे दुःखनाशक प्रमो, ( मा ) मुफे ( हंह ) पक्काकर, ( सर्वाणि ) सब ( भृतानि ) प्राणी ( मा ) मुफे (मित्रस्य) मित्रकी ( चज्जुषा ) श्रांखसे ( समी ज्ञन्तां ) देखें, ( ध्रहं ) मैं ( सर्वाणि ) सब ( भृतानि ) प्राणियोंको ( मित्रस्य ) मित्रकी ( चज्जुषा ) दृष्टिसे ( समी ज्ञे ) देखता हुं, [ हमसब ] ( मित्रस्य ) मित्रकी ( चज्जुषा ) श्रांखसे ( समी ज्ञामहे ) देखते हैं ॥ ई ॥

प्यारो, एक और रहस्यकी बात समक्त लो। संसारसे प्रेमकी द्याशा करनेसे पहिले, स्वयं प्रेम करना सीखलो। किसीसे घृणा मत करो। सारे प्रेमका यह मुल हेतु है। सारा जगत प्रेमके सत्रमें बंधा हुआ प्रतीत होने लगेगा। जो आप तो आगे बढ़ते नहीं, केवल दूसरोंसे अधिक आशाएं रखते हैं, वे निराश होकर दुःख पाते हैं। प्रभुने प्राणियोंको शत्रुताके लिये नहीं पैदा किया। पर मित्रताका प्रकाश तब होता है जब इसकी इच्का करनेवाला, पहिले अपनेसे आरंभ करे।

(७) दते दृश्ह मा ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ॥ १२९॥ ०—१६॥

श्रर्थः—(दते) हे दुःखविदारक प्रभो, (मा) मुफे (दहं) पक्का करो, (ज्योक्) सदा (ते) तेरी (संदशि) (प्रेमभरी) दिष्टेमें (जीव्यासं) जिऊँ, (ज्योक्) सदा (ते) तेरी (संदशि) (प्रेमभरी) दृष्टिमें (जीव्यासं) जिऊँ॥ ७॥ प्यारों, भगवानके पास होनेका अनुभव बड़ा सहारा है। पापीको भय होता होगा। पर, जिसने पाप छोड़कर, ऊपर उठनेका व्रत प्रहण कियाहों, उसके लिये प्रभुकी समीपतासे बढ़कर और बातहोही क्या सकती है ? वही उसका लच्य है। उसेही ढूंढता २ वह यहांतक आया है। अब वह यही चाहता है कि प्रभु उसको सदा अपनी देख रेखमें रखें।

(८) मिय त्यदिन्द्रियं बृहन्मिय दक्षो मिय कतुः। धर्मस्त्रिश्चिग्विराजित विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ॥ १३० ॥ यज्ज० ३८ । २७॥

श्रर्थः—(मिय) मेरे श्रन्दर (त्यत) वह (बृहत्) वड़ी (इन्द्रियं) इन्द्रिय-शक्ति [है], (मिय) मेरे श्रन्दर (दत्तः) वल (मिय) मेरे श्रन्दर (कतु) बुद्धि तथा कर्म [है], (विराजा) प्रकाशात्मक (ज्योतिषा) ज्योतिके (सह) साथ (ब्रह्मणा) ब्रह्म [के] (तेजसा) तेजके (सह) साथ (त्रि-शुक्) तीन तरहके प्रकाशसे युक्त [जीवनकी] (धर्मः) गरमी [मेरे श्रन्दर] विराजाति) चमकती है॥ ॥

प्यारों, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक प्रकाशसे युक्त जीवनको धारण करना ही हमारा छक्ष्य होना चाहिये। इसके विना यही समझो कि भट्टीमें कोइला जल रहा है। वह गरमी जड़ है। जीवनकी गरमीका स्वरूप सर्व प्रकारके प्रकाशसे युक्त होना चाहिये। आत्मिक और मानसिक प्रकाशके विना जीवनकी गरमी अनुचित राग, द्वेष आर क्रीध आदिमें नष्ट होती है। इस प्रकाशसे प्रकाशित होकर प्रभु-भक्तिकी मिठाससे पूर्ण होकर शान्तिका विस्तार करनेयाली होमकती है। मध्येक साधकको आत्म-विश्वासके साथ, इस प्रकारके पूर्ण जीवनको अपने अन्दर अनुभव करनेका सामर्थ्य बढ़ाना चाहिंग। उसके शारीरिक जीवनको जब पूर्णाहुति होनेयाली हो, तो यह अपने भगवानके सामने खड़ा होकर यह कह सके।

(९) अग्ने त्रतपते त्रतमचारिषं तद्शकं तन्मेऽराधि । इदमहं य एवाऽस्मि सोऽस्मि ॥ १३१॥ यजु॰ २ । २८॥

अर्थ:—(अंग्र) हे सर्धेश (वतपते) वर्तोक रक्षक, [मैंने] (वर्त) वतको (अचारिषं) धारण किया है, [मैं] (तद्) उसे (अशकं) पाल सका हूं, (तत्) वह (अराधि) सिद्ध होचुका है। (इदं) यह (अहं) में (यः) ओ (एव) कुच्छ (अस्मि) हूं (सः) वह (अस्मि) [सेवाम उपस्थित] हूं [स्वीकार करो, स्वीकार करो]॥ ९॥

सज्जनो, इस प्रसंगमें अब में और क्या कहूं। जीवनकी पराकाष्टा पहुंच चुकी है। साधकका व्रत ओर तप कि हो चुका है। अब वह जिस ज्योतिकी तलाशमें निकला था, अब वह दिन रात उसके अन्दर और बाहिर प्रकाश कर रही है। लम्बी यात्राकी थकावट दूर हो चुकी। मांगकी धूली उह चुकी। चारों ओर शान्ति ही शान्ति है। सहस्रों बवाँ से बिड है हुए मित्र पुनः गले लग रहे हैं। अब मानस-सरोबर व्रम और आनन्दसे उमड़ रहा है। अब सरस्वतीकी मधुर बीचा हर्यका मोहित कर रही है। धन्य हैं वे सज्जन, जो इस मांगपर चलनेमें ठिच रखते हैं। सर्व साधारणको यह नहीं भाता।

आरम्भमं यह विकट और कठिन है। पर, प्यारो, परिणाम कितना मधुर है ! यही देवताओं और साधारण लोगोंमें भेद है। देवता तुरन्त फलको प्राप्त न करके घबराते नहीं। सत्य, असत्यका विवेक करके, सत्यके मार्गपर वे शान्तिसे चले चलते हैं। समय आता है जब उनकी झोळी मीठेसे मीठे फळोंसे भर जाती है। प्यारो, जो कुच्छ स्थूल आंखोंसे दिखाई देता है, उससे असंख्य गुणा वह जगत् है, जो दिखाई नहीं देता । आत्मिक आनन्द और विकास प्राप्त होनेपर ही ठीक स्वरूपमें अनुभव होसकते हैं। हां, वेद भगवान् इस अनुभवका मार्ग पूर्णतया बताता है। जो श्रद्धापूर्वक इसपर चलेगा, उसकेलिये सुनहरी द्वार खुळ जावेगा । प्यारी, आजके प्रकरणके साथ मानस अध्याय समाप्त होता है । पहिली वार आप जीवके स्वरूप तथा उसके प्रभुके साथ सम्बन्धको समझ चुके हैं। शरीरके विषयमें भी वेद भगवान्का सन्देश सुन चुके हैं। इस वार अन्तःकरणके स्वरूप, सरस्वती-जागरण, ज्ञानकी विशेषता, आन्तरिक द्युद्धि, पुनरुद्धार, आदर्श जीवन-नीति तथा इन सबके यथार्थ साधनोंके विषयमें आपने बड़ी रुचिके साथ उपदेश सुना है। आशा है, आप इन बातोंसे लाभ उठा रहे होंगे।

लोक०-महाराज, जब मेरी काया पलट होरही है, तो इसमें कोई सन्देह ही नहीं।

सत्य०-भगवन्, इस प्रकारसे आपने एक व्यक्तिको लेकर उसकी पूर्णताका चित्र खींच दिया है। महा०—हां, मेरा यही अभित्राय था। तस्वसन्देश, शर्रारसन्देश और मानससन्देश मिलकर हमारे सामन हमारे स्वरूप, आदर्श और उसकी प्राप्तिक मार्गको पूर्णतया रक देते हैं। यह वेद भगवान्की महिमा है, कि उसमें इतना पूर्ण वर्णन है।

वस्तु०-आपकी बातसे कुच्छ ऐसा प्रतीत होता है कि अब आप हमसे यह आत्मिक आनन्द छीनना चाहते हैं।

महा०—प्यारे, इतना सुनकर भी ऐसा क्यों कहते हो ? अब यह आनन्द तुम्हारा हो चुका। इसे कोई छीन नहीं सकता। मेरा विचार कुच्छ दिनकेलिये हरद्वारके कुम्भपर जानेका है। वहांसे वापिस आकर फिर आपके सामने दूसरे प्रकरणका आरम्भ करूंगा।

माया०—महाराज, कब प्रस्थान करेंगे ? मेरा भी आपकी सेवामें चलनेका विचार है।

सत्य०—बस, अब तय्यारी ही है। वैशाखींसे दो तीन सप्ताह पूर्व तो वहां पहुंचना ही चाहिये।

महा०—बहुत अच्छा, सज्जनो, तब तक आपने जो कुच्छ सुना है, इसे सफल करते रहो। प्रभुने चाहा, तो फिर इसी प्रकार कुच्छ दिन और वेद मगवानके पवित्र सन्देशको सुने सुनावेंगे।

इति वेदसन्देशे तृतीयोऽध्यायो द्वितीयो मागश्च समापः।



## वैदिकाश्रम-यन्थमाला लाहौर

- इस मालाका उद्देश्य वैदिकधर्मके प्रचारार्थ सरल और
   स्थायी साहित्यका प्रकाश करना है।
  - २. स्थायी प्राहक बननेका शुल्क ॥) है।
- स्थायी प्राहकोंको प्रत्येकपुस्तक पौने मृख्यपर मिलेगी।
   पुस्तक निकलनेपर सूचना दीजावेगी।

#### इस मालाका प्रथम पुष्प— वेद-संदेश प्रथम भाग।

दुसरा कुम्म संस्करण तच्यार है। सुनहरी जिल्द मूल्य १॥)

द्सरा पुष्प-

## देवयज्ञ-प्रदीपिका।

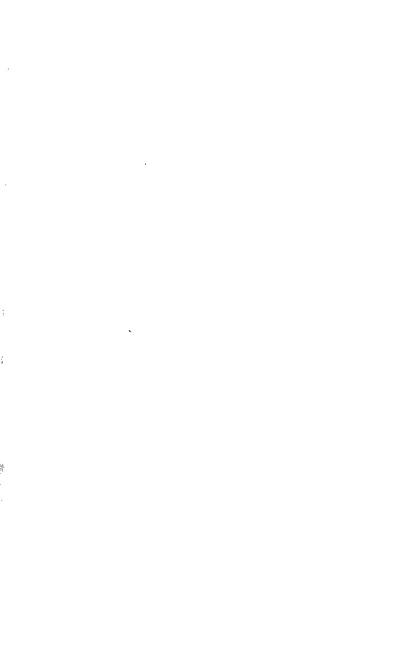
कर्मकाण्डकी आधिभौतिक और आध्यात्मिक विवेचना, तथा मंत्रोंके सरल अर्थ। सुनहरी जिल्द मूल्य १।) कई और उत्तम ग्रन्थ शीघ्र छपनेवाले हैं। स्थायी ग्राहक बनें और अमृत पान करें।

पत्र व्यवहारका पता—

मैनेजर वैदिकाश्रम-प्रन्थमाला

दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय,

लाहौर ।



# CATALOGUED.

in the second

16/1/10

# Central Archaeological Library, NEW DELHI. Acc. No. 19607 Call No. 294.1/Vis Author- Visvabandhu Title\_Veda Sandesha.-2 book that is shut is but a block ARCHAEOLOGIC GOVT. OF INDIA Department of Archaeology NEW DELHI clean and moving